कुशाभिषेकम्

(कुश का राज्यारोहण)

हिन्दी-काव्य-ग्रन्थ

ब्रह्म लोचन दुबे

कुशाभिषेकम (कुश का राज्यारोहण)

काव्य ग्रन्थ (हिन्दी)

प्रकाशक: सहयोगी मुद्रण तथा प्रकाशन सहकारी समिति लि०
२१४/१८० ए/४ए, नागवासुकि, दारागंज
इलाहाबाद-२११००६

वितरकः भारतीय विद्या मंदिर
६६०,शिवकुटी, इलाहाबाद २११००४, दूरभाष ६४४४९७

प्रथम संस्करणः १९९७

मूल्यः ५०/- पेपर बैक ३०/-

मुद्रकः कैक्सटन प्रेस
१ए/१, बाई का बाग, इलाहाबाद

प्राक्कथन

गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम चरित मानस में स्पष्ट शब्दो में मार्ग दर्शन किया है-

परहित सरिस धर्म नहीं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

लेकिन हकीकत देखने में यह आती है कि परहित में लीन लोग दीनहीन जैसे संकट गस्त रहते हैं और उनकी कहीं सुनवाई नहीं है, जब कि पर-पीड़ा व्यस्त सम्पन्न और सुखी हैं और समाज मे हरक्षेत्र में हावी है। विशेषकर सत्ता और सम्पत्ति पर उनका अंकुश है। 'समरथ कहुँ नहि दोष गुसाँई'- जैसे आश्वासन से उनके हौंसले और बुलन्द हो गए है जिससे दयाहीन- नोचनहारी के धन्धे में लगे रहने पर उन्हें कोई लाज नहीं आती।

इस यथार्थ पर हर किसी को पीड़ा होना स्वाभाविक है। फिर चिरंजीव व्रह्म लोचन जैसे संवेदनशील कवि हृदय को तो और भी ज्यादा। उनकी यह व्यथा (जिसका मै १९६० से साक्षी हूँ) लगातार वढ़ती गई है। हाल के चन्द सालों मे इसने उनको वहुत व्यग्र कर दिया और रेलवे सर्विस में रहते हुए भी समाधि की स्थिति में पहुँचा दिया जिसका सुखद परिणाम उनकी यह अनोखी और तेजस्वी रचना है। अपने प्राचीन धर्म-ग्रन्थों वेदो, उपनिषदो, शास्त्रों आदि से महान आदर्शो और उच्च सिद्धान्तो की शानदार विरासत हमें मिली। आदि गुरु शंकराचार्य ने हमे सावधान कर "व्रह्म सत्य जगत मिथ्या" का सन्देश दिया। क्या विडम्वना हुई कि हमने मिथ्याचरण को अपना वाना वना लिया और ऐसी गफलत के शिकार हुए कि गुलाम वन वैठे, पहले मुसलमानो के और फिर अंग्रेजों के। अनेक साधुसन्तो ने हमे चिताया और भक्ति ज्ञान वैराग्य आदि की सार्थकता बताई। लेकिन गुलामी के खिलाफ वगावत का विगुल किसी ने वजाने की हिम्मत नहीं की, यहाँ तक कि स्वामी विवेकानंद के विशाल वाङ्मय मे भी अंग्रेजी बेड़ियों- हथकडियों को काट डालने वाला एक शब्द भी नहीं मिलता।

बलिहारी हो श्रद्धेय दादाभाई नौरोजी की, जिन्होंने १९०६ में 'स्वराज्य' शब्द उद्घोष कांग्रेस के मंच से दिया। 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' कह कर लोक मान्य तिलक ने इसमे प्राण फूँक दिये। लेकिन हर किसीके सामने सवाल था- इसे हासिल कैसे किया जाए ? इसका हल १९१९ में दिया महात्मा गांधी ने और विदेशी राज को "शैतानी हुकूमत" की संज्ञा देकर तो देश को जगा दिया और अहिसक असहयोग तथा सत्याग्रह के विभिन्न कार्यक्रम रखे। जिसकी वदौलत १९४७ में दुखद विभाजन के साथ हमने स्वराज्य प्राप्त किया।

स्वाधीन भारत का पथ प्रदर्शन करते हुए सन्त शिरोमणि आचार्य विनोवा भावे ने मंत्र दिया "व्रह्म सत्यं जगत स्फूर्ति जीवनं सत्य शोधनम्" इसी आधार पर हमारे कवि ने आवाहन किया है-

"ब्रह्म सत्य है जगत स्फूर्ति दे जीवन सत को शोधे।
जीवन दर्शन सत्यरूप में हमको यही प्रबोधे ॥"

वस्तु-स्थिति की झलक देते हुए वह भरे दिल से कहता हैः-

"सब व्यवहार विनष्ट हो गए नष्ट हुए व्यापार सभी
कृषक वर्ग का शोषण जारी, छोड़ भगे घर-बार सभी

आडम्बर औ दंभ धर्म में घुसे नीतिका नाश हुआ
हिंसा तांडव नृत्य कर रही और अधर्म प्रकाश हुआ"

बड़ा भयानक दृश्य हैः-

"किन्तु हलवाहा श्रमिक शोषित हुआ बन दीन
सकल विधि होकर तिरस्कृत औ उपेक्षित हीन
उधर कोलाहल कलह और केलि-रति में लीन
इधर व्याकुल क्षुधित शोषित नग्न तन अति-दीन'

इस भीषण स्थिति से छुटकारा कभी मिलेगा क्या ? चि० ब्रह्म लोचन दुबे इत्मीनान के साथ बताते-जरूर मिलेगा । आप पूँछेगे- क्या करना होगा ? उनका उत्तर

"हमें मित्र अनुराग नहीं स्वामित्व बदलने भर का
हमें विसर्जित करना ... ामित्व भाव इस जग का
सत्ता के परिवर्तन में हमको अनुराग नहीं है
सत्ता का सम्पूर्ण विसर्जन करना हमें सही है"

इसकी प्रक्रिया क्या होगी ? इसका इशारा है कि पुराने षट चक्रों की जगह चक्र-षट अपनाना होगा । जिसमें प्रधानता होगी इन छः कीः- आशा, ध्यान, पराक्रम, श्र समता और सहकार । इसकी विशेषता है ?

"सहकार चक्र में मित्र समन्वय और समुच्चय जानो
तभी पूर्ण आनंद प्राप्ति का श्रेष्ठ पंथ अनुमानो ।
इसीलिए फिर से न करें हम किसी वर्ग का नव सर्जन
हमें वर्ग का शोषण का सत्ता का है करना निरसन"

लक्ष्य क्या है ?

"मिटाना ताप जग का है धरा का भार कम करना
मनुज रह सके चिरकालिक हमें उद्योग यह करना"

क्रान्तदर्शी ब्रह्म लोचन को पूरा भरोसा हैः-

"धरा हम बदल डालेंगे जगत यह बदल डालेंगे ।
मनुज को अब महामानव बनाएँ; हम बनाएगें"

आज का नौजवान पूँछ रहा है:- आजादी के पचास साल पूरे हो गए, देश दुर्दशा किसी से छिपी नहीं है । अब आगे कैसे क्या करना है ? इसका प्रामाणिक अ विश्वसनीय उत्तर देश के किसी राजनीतिक नेता के पास नहीं है । मगर उसे हताश होने गुंजाइश नहीं है । उसको उत्तम दिशा बोध करना ही *कुशाभिषेकम्* जैसी इस अन्तरात्मा जग समन्वय प्रेरक विघटन हारी साहसपूर्ण और युगान्तरकारी कृति का उद्देश्य है ।

सुरेश राम भ
१९९७ दिसम्बर

भूमिका

आग्ंल एवं यवनों की कई शताब्दियों की दासता के बाद भारत स्वतंत्र हुआ और अपनी नियति तय करने को समर्थ हुआ तो प्रश्न उठा कि वह कौन सी दिशा, वह कौन सा गन्तव्य हो जिधर भारत चले तथा उसकी प्रक्रिया क्या हो । भावी भारत का वह नक्शा कौन सा हो जिसे प्राप्त करने के लिए हमारे कदम उठें ।

आजादी की लड़ाई के दिनों में उस समय के तरुणों को रूसी क्रान्ति का बडा आकर्षण था । उससे प्रभावित हो कर बहुत से नव युवक बेचैन हो उठे । कुछ उसके भारतीय संस्करण की भी खोज करने लगे और कुछ ने पश्चिमी सुधार वादियों का पद-चिन्ह भी पकड़ा । पर सत्तर सालों में ही जब वह आकर्षक व्यवस्था भर भरा कर गिर गई तब उसकी प्रतिक्रिया में वही पूँजीवाद दुनियाँ पर फिर हावी होने लगा जिसके कारण आज की सभ्यता चौपट हो रही है । मानव दास बनने को अभिशप्त हो रहा है। पूँजी का दास, पूँजीपति का दास ।

रूसी व्यवस्था की असफलता के कई प्रमुख कारणों में प्रथम था, पूँजीवाद व्यक्तिगत; पूँजी वाद के स्थान पर राज्य-पूँजीवाद दूसरा था अत्यधिक केन्द्रीकरण और तीसरा था मनुष्य को यंत्रवत मान लेना तथा मानवीय गरिमा की समाप्ति । परिणामतः मनुष्यो में यह भावना लाई नहीं जा सकी कि वह अपना स्वयं का काम जिस निष्ठा, जिस लगन से करता है मालिक का या समाज का काम भी उसी लगन से करे । परिणाम सामने है । सारी व्यवस्था के बावजूद, तमाम हिंसा या दबाव के बावजूद, श्रमिक काम नहीं करता । अधिकारी ईमानदारी नहीं बर्त्तते । भ्रष्टाचार और अकर्मण्यता के कारण साम्यवाद जैसा उत्तम विचार असफल हो गया । पूँजीवाद तो कभी सफल रहा ही नहीं।

ऐसी स्थिति में देश किस ओर चले । जो भी सिद्धान्त या दिशा तय हो उस पर कम से कम एक हजार वर्ष तो जरूर ही रहा जाए । इस पर सोंचते सोंचते गांधीवाद और विनोबा के बताए सर्वोदय के रास्ते से होता हुआ, साम्यवाद के शासन हीन शोषण हीन और वर्गहीन विचार और जितनी क्षमता उतना काम जितनी जरूरत उतना दाम का चिन्तन करते मैं वेदान्त तथा विज्ञान और विकेन्द्रीकरण की सीढ़ी पर जा पहुँचा जिसकी झलक आप को इस काव्य में मिलेगी । जब मैं पलट कर देखता हूँ तो हमें अपना सनातन स्वरूप ही दिखाई पड़ा । वही प्राचीन अर्थ व्यवस्था जो नित्य नूतन है यानी सनातन है । पहुँचा मैं जरूर वहीं, पर सीढ़ी मेरी अपनी है । साम्यवाद और सर्वोदय की सीढ़ी । दोनों के उत्तमतर अंशों का संमिश्र रूप ।

इस पर अगर पश्चिम का कोई अन्धानुरागी अँगुली उठाता है तो इसके लिए वह स्वतंत्र है। पर भारत को अगर दृढ़ समाज व्यवस्था की आवश्यकता हो तो इससे भिन्न कोई अन्य राह नहीं है।

भगवान राम के जाने के बाद अयोध्या उजड़ गई थी उसे कुश ने फिर से बसाया। ऐसा अपने साहित्य में आता है। यह कथा भी आती है कि कुश भगवान राम के अपर-सुवन थे। महर्षि बाल्मीकि के आश्रम में सीता जी ने लव को जन्म दिया। सीता जी एक दिन पानी लेने जाने लगीं। उन्होंनें महर्षि को सोते हुए लव का ध्यान रखने को कहा। महर्षि ध्यानस्थ थे। सीता जी यह देख अचकचा गई और जाते जाते लव को लेते गई। उधर जव महर्षि ने आँखें खोली तो लव को नही देखा। अशुभ आशंकाओं के कारण उन्होंने एक कुश शय्या पर रख अपने तपोबल से उसे लव के सदृश एक बालक बना दिया। जब सीता वापस आई तब महर्षि को वास्तविकता का पता चला। प्राण डाल दिए गए कुश को महर्षि पुनः निर्जीव नहीं करना चाहते थे। फलतः दोनों बालक बने रह गए, एक रंग,-एक रूप, हू-बहू वैसे ही।

इस काव्य में इसी कुश को नायक माना गया है और अयोध्या के बहाने भारत या यों कहें सम्पूर्ण मानवता की चर्चा की गई है। जिसका अन्त कुश के अभिषेक से होता है। कुश का अभिषेक हुआ; नही! कुश से लोगों ने अपना अभिषेक किया। कुश का राज्य यानी किसी का राज्य नहीं; शासन हीन व्यवस्था। इसमें गुणों के अनुरूप ही नाम दिए गए हैं अगर गुणों के रूपक का भी ध्यान करें तो वह भी उचित ही होगा।

बुधवार कार्तिक शुक्ल पंचमी २०५४ वि०
तदनुसार - २२-१०-९७

ब्रह्म लोचन दुबे

कुशाभिषेकम्

(कुश का राज्यारोहण)

"अरे बटोही! कहाँ जा रहे जीवन की सन्ध्या में
अरुणाभा है छिपी जा रही तम निराश झंझा में,
अन्धकार का तमस छा रहा इस नीरव निर्जन में
शून्य पंथ है गहन रात्रि है ग्राम न इस निर्जन में -१-

श्रान्त क्लान्त हो शिथिल प्राय हो हर्ष नहीं तन मन में
स्वेद बूँद भी चमक रही हैं औ उदास जीवन में,
पाद-युगल भूभुर-सुतप्त हैं शिथिल नहीं उठ पाते
कौन आश में कौन ध्येय से किन्तु चले हो जाते" -२-

सुना बटोही ने मृदु-युग-स्वर नारी के कम्पन से
रुका बहुत ही व्यग्र बना था जीवन के दुख कन से,
देखा मुकुलित नयन खोलकर युगल मूर्ति नारी की
कोमल कलित-ललित-सनेह चिर-जगत-उदर-धारी की -३-

दूर जहाँ तक दृष्टि जा सके कोई और नहीं था
खड़े हुए थे विटप वृन्द शुभ कुंज बना सुन्दर था,
लता गुल्म तृण बिहँस रहे थे मानो इस मानव पर
औ झिल्ली झनकार रहा था व्यंग्य करे मानव पर -४-

मनु का सुवन वही मानव जो धरती का धारक है
वही स्वयं में गर्व करे जो बनता प्रति-पालक है,
जिसने सबको दमित दलित कर अपना शीश उठाया
वही मनुज जीवन के पथ पर हो निराश अब आया -५-

भोगा बहुत दिनों से वैभव सुख आनन्द मनाया
काम क्रोध मद लोभ मोह मत्सर से जगत सजाया,
हर्ष और उत्साह दंभ ने गर्वीभूत बनाया
किन्तु जगत के सान्ध्यकाल मे कोई काम न आया -६-

घिरती है अब विषम वेदना उसके जीवन-क्रम मे
पंथ हीन है दिशा हीन है आशा नहीं भुवन में,
उसका अब गंतव्य नहीं है शेष न मग उसका है
ज्ञात मार्ग तक अब तक मानव मानों पहुँच चुका है -७-

सुना बटोही ने मृदु-युग-स्वर बोला सजल हृदय से
खोला निज परिताप-जगत का करुणा कलित हृदय से,
'करुणा भरी मृदुल ममता की मूर्ति जरा दर्शन दो
निज स्वर को नजदीक करो औ मुझको पावन कर दो -८

मैं हूँ मनुज थका हारा मानवता का शावक हूँ
गति को प्रगति समझ चलता मैं लिए अगति शाश्वत हूँ,
मैं अतीत से चला आ रहा वही हृदय तन मन है
वही भाव है वही कर्म है वही धर्म जीवन है -९-

आज पंथ का अन्त दीखता आगे मार्ग नहीं है
सभी मार्ग हैं चुके, विजित, नूतन पथ शेष नहीं है,
धर्म राज्य विज्ञान नीतियाँ हुए सभी निष्फल हैं,
अंधकार पथ दिशा शून्य है मानव पड़ा विकल है -१०-

मानव का मन प्रकृति रूप से विकृत हुआ दनुज है
संस्कारों से नहीं शमित है दंभी बना मनुज है,
चाह रहा सारे समाज को कैसे लूट सकूँगा
महल अटारी वैभव सब स्वजनों हित सँजो सकूँगा -११-

जग की सभी कामिनी औ कांचन का भोग करूँ मैं
भले दूसरे हों क्षुधार्त्त श्रम-आर्त्त सकल वसुधा में,
जग में मार्ग हुआ निःशेष है जाना किन्तु मुझे है,
बुला रहा है मुझे नया पथ जाना जल्द मुझे है -१२-

नारी ने धीरे-धीरे
मृदुमय आवाहन कर के,
करुणा की घूँट पिला के
लौटाया उसे विजन से -१३-

आश्रम - १ आगमन

आश्रम में आ सुना सभी ने गुरु का गुरु-उदघोष
सभी शिष्य गण सिमट गए थे ज्यों मकरन्द सुकोष,
सायं सन्ध्या की समाप्ति थी हवन धूप जल हुए शान्त
समिधाओं का नाम शेष था नीरवता फैली प्रशान्त -१-

"कहाँ गई थी करुणा! लज्जा! सायं सन्ध्या की वेला
परम पुरुष जग के संचालक के वन्दन की शुभ बेला
और अकेली अंधकार में, राह छिपी अंधियारी में
घूम रहे निशिचर पशु-हिंसक आशंका आए मन में -२-

वत्स! तुम्हारी कीमत का अन्दाज न हो सकता है
तुम्हें गँवा आश्रम जग बोलो कभी सो कि सकता है?
तुमसे ही है सचर हो रही आश्रम जग की माया
उभय-जनों के इस विलम्ब से अरे बड़ा दुख पाया" -३-

बोली करुणावती, मूर्ति करुणा की जो आश्रम में
जिसका शुभ व्यवहार उच्च शालीन दयामय जग में,
शाप-ताप-भव-भय-मरीचिका को हरने वाली प्रसिद्ध
दमित दलित का आश्रय बनती औ शोषण के थी विरूद्ध -४-

"क्षमा पाप हो पिता! हमारा निश्चित मैं अपराधी
लज्जा के संग विजन गई यह बात हमारी आधी,
आधा यह वृत्तान्त आपके सम्मुख लेकर आई"
दिखा बटोही को गुरुजी को रोक न सकी रुलाई -५-

देखा विकल बटोही ने करुणा उसके हित रोती
मान और अपमान सहन कर आँसू से मुख धोती,
सभी शान्त थे देख रहे थे, कौन बोलता पहले
और वहाँ बस ढाल रही थी करुणा भाव रुपहले -६-

सभी शिष्य गण शान्त वहाँ थे गुरु का वदन विलोकें
गुरू के नहीं गुरू बनने को आतुर वे सब दीखे,
शिष्य बनेगा गुरू कभी अपने शिष्यों के जग का
न की, गुरू का गुरू बनेगा उलटा पथ जग मग का -७-

गुरु भी राग-द्वेष से ऊपर पिता सदृश रहता है
तभी भ्रातृ-वत्-प्रेम सभी शिष्यों में रह सकता है,
वहाँ पला मृग-शावक भी हिलमिल कर रहता ऐसे
केकी सुवन मस्त गाता चढ़ मृग पर बालक जैसे -८-

नीरवता को भंग कर रहा बोला विकल बटोही
"गुरु जी पाप नहीं देवी का दोषी यही बटोही,
इसका ही अनुताप श्रान्ति दुख गाथा कम करने को
इसका ही नैराश्य-विषमता-जीवन सहलाने को -

क्षण भर करुणा भरी नयन-[illegible] में देख सकीं जो
इस उदास को प्रभु के सम्मुख प्रस्तुत देख सकीं जो,
उनके प्रति श्रद्धाभिभूत हो मैं निज शीश नवाता
उन पर जो हो दण्ड आदि मैं निज को प्रस्तुत करता'-१०-

कह ऐसा वह विकल बटोही बिलख बिलख कर रोता
गुरु के चरण-कमल पावन-रज को स्व - अश्रु से धोता,
आर्त्त भाव से युगल करों से गुरु के चरण पकड़ के
तपः पूत श्रद्धाभिषिक्त पद पकड़ हृदय पर धड़के -११-

"कौन? कहाँ से आए हो? गन्तव्य तुम्हारा क्या है?
इस प्रकार प्रस्तुत क्यों हो? मन्तव्य तुम्हारा क्या है?"
बोला, "वह कुछ दूर यहाँ से सरयू नदी किनारे
अवधपुरी था नाम कभी वह ग्राम पड़ा मन मारे -१२-

भग्नप्राय सब विभव हीन बुझ रहा दीप आशा का
लीला धाम पतित पावन मर्यादा पुरुषोत्तम का,
वही हमारा ग्राम दुखद छिन गया सभी धन मेरा,
भूमि हीन हो श्रम करता नभ नीचे करूँ बसेरा -१[illegible]-

जितनी उत्तमतर विभूति है नहीं चाहिए जग को
इसे चाह है स्वार्थ, संकुचित नष्टप्राय लघुतर ही,
हरिश्चन्द्र सा सत्यव्रती नर ने कितना दुख पाया
कितनी दारुण विषम वेदना, विरह व्यथा था पाया -२१-

अरे! परीक्षा लेकर उसकी किसका हित था कीन्हा
मानवता को 'दुखद प्रेरणा' से अन - प्रेरित कीन्हा,
मोरध्वज से जाकर छल से सुत को था चिरवाया
नहीं असुरता या सुरत्व को कभी सहन कर पाया -

असुरों में भी जो सपूत थे सु-गुण बहाँ जो रहते
उन्हें मान्यता देकर के क्यों सुयश नहीं कह सकते,
रावण की वह सभा भला क्या यश के योग्य नहीं थी
खुले आम निज-बात कथन को खुली रहा करती थी -२३-

उसे चाहिए सभा अवध की जहाँ न गुरु भी बोले
कितना भी हो ह्रास-न्याय का किन्तु न मुख निज ख
सभी बात में हाँ हाँ करता रहा वशिष्ठ विचारा
राम नृपति हों या बन जाएँ उर से नहीं उचारा -२

मानव के सुन्दर सुपूत शिशु बिलख बिलख कर रोते
माँ का आँचल पकड़ मचल हठ करके उससे कहते,
'तुम्हें चाहिए अगर सुभगता सुन्दर श्याम दुलारा
लो मृग शावक श्वान-सुवन गो-वत्स अजासुत प्यारा -२५-

मुझे छोड़ दो विजन बिपिन में अपना अंक छुड़ावो,
अपनी गोदी से उतार दो अश्रु न चख में लाओ,
अपने सुत की नहीं चाह है 'मानवता-माँ' हारी
स्नेह शून्य है स्वार्थ-सिक्त द्वेषाभिशप्त दुखियारी'' -२

कह विनत हुआ वह राही
दीनता-द्रवित हो कर के,
अपना पन और पराया
का भाव मिटा आश्रम में -२७-

मानव का दुख मानव-कृत यह नहीं ईश का सर्जन
अब आचार विचारों का अन्तर करता नभ चुम्बन,
'एकोऽहम्' का नाद-घोष पर जाति भेद का सर्जन
'सियाराम मय' पावनता के साथ सभी का दोहन" -७-

देख सोम की ओर नयन से पुनः जनेश्वर बोला
गुरु के वाक्य समाप्ति पूर्व ही हृदय तमस निज खोला,
'गुरु जी! हम बनवासी हैं औ हम एकान्त निवासी हैं
धर्म मुक्ति औ ज्ञान हेतु हम योगी और उदासी हैं -८-

ब्रह्मचर्य औ उपासना की हमने राह चुना है
है असार संसार हृदय से हमने बहुत गुना है,
ले विवेक वैराग्य हृदय में हमने जग छोड़ा है
नहीं पराजित हो कर हमने जग से मुख मोड़ा है -९-

एक ईश की उपासना में उसके व्रत पूजा में
अर्पित है सारा जीवन यह ध्येय नहीं दूजा में,
किया त्याग वास्तव में हमने त्यागी तभी बने हैं
गाँव नगर घर महल छोड़ जंगल मे आ ठहरे हैं -१०-

एक राम है एक ईश है ब्रह्म एक ही सच है
मिथ्या है संसार शेष जग की ऐसी ही गति है,
माया, नटिनी का कौशल सब, उसका खेल प्रबल है
इसी महा, द्विविधा में मानव मानों हुआ अबल है -११-

क्षण भंगुर संसार गुरू जी राग न इससे हमको
क्षणिक बुलबुला पानी का अनुराग न इससे हमको,
अपना तो है पंथ पृथक ही धर्म धारते हम हैं
जग के कर्म भार ढोने को और मनुज क्या कम हैं'? -१२-

एक बटोही नहीं, शताधिक, हमें न चिन्तित करता
गुरुवर! नहि एकाग्र साधना को उद्वेलित करता,
यह 'स्वधर्म' कर्त्तव्य हमारा धर्म पंथ है अपना
शेप जगत को छोड़ दिया है सत्य समझ ही सपना -१३-

धर्म धारता है धरती को धरा धर्म को धरती
अन्योन्याश्रित तत्त्व उभय है नहीं धरा है परती
मनुज साध्य है ईश जगत का धर्म साधना पथ है
व्यष्टि रूप में धर्म मनुज का सदा प्रगति का रथ है -२१-

ब्रह्म सत्य है ईश सत्य है इसे हृदय से मानूँ
मिथ्या है संसार इसे वैराग्य-भाव से जानूँ,
क्योंकि जगत को सत्य मान निष्काम, विराग न सधत
क्षण भंगुरता को विलोक चिर-सत्य मान नहिं सकता

अगर वृक्ष है सत्य भला शाखाएँ मिथ्या कैसे
अगर उदधि है सत्य भला सरिताएँ मिथ्या कैसे,
अगर सूर्य है सत्य सूर्य की किरणें मिथ्या कैसे
वृक्ष उदधि रवि सदृश ब्रह्म सच मिथ्या जग हो कैसे -२३-

माया नटिनी का न खेल यह नहीं काल की गति है
व्यष्टि भाव से दिखे सत्य पर नहीं चिरन्तन गति है,
नदी भरी जल से अगाध अम्बुधि को दौड़ी जाती
सभी मानते और जानते कहते जाती गाती -२४-

किन्तु कहीं क्या जल ठहरा? हो सरिता किं वा सागर
सदा सचल है यदपि अचर जड़ कहें बुद्धि नय-नागर
एक निमिष जो पूर्व पड़ा जल कहीं और को भागा
किन्तु नदी यह सदा रहेगी शाश्वत पथ है जागा -२५-

क्षण भंगुर है मनुज वर्ष शत जीवन उसने पाया
केलि कलह कोलाहल औ कामिनी कनक भरमाया,
शोषण युत सत्ता सम्पति का जिसने रास रचाया
मनुज मृत्यु ढिंग निरालम्ब हो जग तज कहीं सिधाया -

देखा हमने जिन लोगों को कई वर्ष था पहले
आज नहीं उसमें से कितने चेहरे मिलें सुनहले,
कितने स्नेहिल सुखद कामनाओं के सागर ले के
फैलाया संसार स्वप्न सा चले हाथ पर धो के -२७-

प्रकृति पंक की पंकिलता में पंकज खिला खिला है
सुखद सुमन सौरभ समीर सँग सुन्दर हिला मिला है,
पंखुड़ियों में जो सुगन्धि मादकता औ मधुराई
अरे! उसी का रूप मनोहर दिशा विदिशि में छाई -३५-

गाती कुलकुल नाद नदी नद उदधि स्व लक्ष्य बनाए
निमिष विपल पल घड़ी अहर्निशि कैसी दौड़ लगाए,
किस प्रियतम के मिलन साध को पूरा करने जाएँ
अरे! उसी प्रभु के विलास का एक रूप दिखलाएँ -३६-

चह-चह चिड़ियाँ चहक रहीं चख चारों ओर लगाए
गीत गा रहीं स्वमन ध्यान से हम तुम समझ न पाएँ,
अरे उसी की गीत गा रहीं, है वियोग; संयोग कभी
उनके अन्तर में विलोकता ईश रूप प्रतिरूप सभी -३७-

मलयानिल मृदु मन्द समीरण मदिर मदिर मुसकाता
पीपर पाकर पीत पत्र पोषित कर हरित बनाता,
पाकर स्नेहिल संग सुमन सा पत्र-वृन्त पर झूमें
अरे! स्नेह मय मृदु ममता मय सत्य उसी का घूमें -३८-

जगती है आवास सत्य ही उस प्रभुवर का देखो
नहीं! जगत ही प्रभु स्वरूप है इसे ध्यान से लेखो,
मनुज संग सब जीव जगत उसके ही चेतन तन हैं
अचर पड़ा जो दृश्य जगत में उसमें भी सत-मन हैं -३९-

हम उपासना करें ईश की कर के खण्डित उसको
निज इच्छा अनुरूप सृष्ट कर दें स्वरूप फिर उसको,
उलटा हुआ कार्य यह जग में हमने ईश बनाया
और उसी की पूजा करने को सब धर्म चलाया -४०-

भला ईश को देखा किसने? देख कौन क्यों बोले?
मृत्यु देख पाया है किसने? मर्म कौन फिर खोले?
दीर्घ अगोचर नदी बीच में हममें उसमें सोहे
एक किनारे हम हैं बैठे एक किनारा जोहें -४१-

जाते ही उस पार नदी के यह तट सदा भुलाना
उस तट का आकर्पण इतना नहीं लौटकर आना,
किन्तु उभय तट ईश रूप है दोनों नित्य प्रवाहित
विलग रहे दो तट अनन्त पर दोनों ईश-समाहित -४२-

ब्रह्म सत्य है जगत स्फूर्ति दे जीवन सत को शोधे
जीवन दर्शन सत्य रूप में हमको यही प्रबोधे,
धर्म बना है संविधान जग का इसको पहचानो
मूढ़ भाव ले जगत त्याग दो धर्म इसे क्यों मानो -४३-

कुंडलिनी जागृत कर हमने जो सुशक्ति पाया था
आत्म देव का दर्शन कर सन्तुष्टि-मुक्ति लाया था,
योग पंथ आलोक युक्त चिर नाद-ब्रह्म को पाया
स्वर-सौष्ठव औ देह कान्ति शुभ देह-गन्ध को पाया -४४-

ध्यान धारणा औ समाधि का था प्रशस्त पथ कीन्हा
सभी नियम यम और कर्म-पट का अनुपालन कीन्हा,
त्रयी बन्ध मुद्राएँ सब उन्मनी दशा तक जा कर
ब्रह्म रंध्र तक पहुँच लौट फिर जगत स्वर्ग था कीन्हा -४५-

मनोभूमिका में मनुष्य अल्पज्ञ रहा जो करते
श्रद्धा-भक्ति पंथ दे उनको, उन्हें मुक्त थे करते
बुद्धि भूमिका में रह कर विज्ञान-कोप जो चरते
ज्ञान मार्ग के शुभ्र पंथ से उन्हें मुक्त थे करते -४६-

इन दोनों से थे सुदूर-ऊपर-अध्यात्म निवासी
क्रियायोग या राजयोग या सहज योग के वासी,
तभी अविद्या में तम दीखा विद्या में तम-गुरुतर
असंभूति पथ मनोराज्य तम बुधि विकास तम-गुरुतर -४७-

किन्तु न एकांगी पथ अपना विरति-योग का जाने
पूर्ण मनुज हित पूर्ण पंथ का पूर्ण ध्येय अनुमाने,
नहीं योग से नहीं विरति से विश्व चला है करता
नहीं भक्ति पूजा सुयज्ञ से काम चला है करता -४८-

चलता है यह विश्व कर्म से आशा साहस श्रम से
बनता है प्रासाद भुवन बस मात्र स्वेद के क्रम से,
ग्राह्य प्रकृति श्रम-साध्य वेदना श्रम पर अवलम्बित है
अवशि पुरुष अन्तर्निगूढ़ योगानुकूल बन्दित है -४९-

इसीलिए जग का जीवन का ध्येय समग्र बनाते
अन्दर से हों तृप्त मुक्त हम ऐसी राह बनाते,
इसे पूर्ण करने को जग में धर्म अर्थ अपनाते
पुरुप प्रकृति परलोक लोक को सुगम बनाते जाते -५०-

सृजित किया आश्रम था हमने नहीं जगत तजने को
निज कल्पना प्रसूत ईश को अरे! नहीं भजने को,
यह प्रयोग शाला समान नर-पथ के सदा प्रगति का
नहीं विखंडित नर समाज से पथ नहिं कभी अगति का -५१-

हमने देकर शास्त्र नीति था नर-समाज को बाँधा
सत्ता औ सम्पत्ति का वितरण सब समाज में साधा,
आज समस्या जो महान मानव समाज पर छाई
करें निवारण उसका भी यह सच 'स्वधर्म' है भाई" -५२

आसमान में तम तारक थे
अद्भुत गति से नाँच रहे,
शिष्य मनस-अन्तर में जैसे
करते कर्म कुलांच रहे -५३-

संचय से है एक पुष्ट होता पर एक उड़ाए
एक पूज्य है, दुराराध्य है एक दुखी हित धाए,
एक सचल मिलि बिहँस तजेगी आँसू एक बहाए
छिपे बचे लोगों से दूजा तस्कर भी अपनाए -८-

कह कर विहँसे ज्ञान देव औ देखा दोनों सखियाँ
हँसती हुई अलग आलिंगन पाश बनीं वे दुखियाँ,
बोली करुणा "अरे सहोदर होकर हँसी उड़ाते
मेरी प्यारी सखी मधुर इसको क्यों आप चिढ़ाते -९-

कर्म देव की अनुजा प्यारी अनुजा सदृश हमारी
मिली हमें वन-प्रान्तर में आ हरती व्यथा हमारी,
इसके पास नहीं रहने से व्याकुल सदा रहूँ मैं
मिलने पर होता कितना सुख कैसे भला कहूँ मैं -१०

सहज सलोना मुखड़ा इसका देख सभी ललचाते
इसकी क्षमता शक्ति गुणों को देख दौड़ कर आते,
कैसे पाएँ रखें पास इसको चिर काल विचारे
पाकर त्याग नहीं करने को उत्सुक हों मन मारे -११-

ऐसी प्यारी सखी प्राप्त कर मैं आनन्द मनाती
दो दिन के उपरान्त त्याग, पितु गेह चली ही जाती,
फिर से आश्रम जगत हमारा सूना सा खोया सा
निर्विकार निर्लिप्त भाव सँग रहे सदा सोया सा" -१२

लक्ष्मी का ऐश्वर्य श्रवण कर ज्ञान देव यों बोला
"भगिनी करुणा रानी! तुमने तब रहस्य ही खोला,
प्रियंवदा होने के कारण स्तुति ही तुम करती हो
अपने मोह जाल के कारण दोष न हिय धरती हो -१३-

सखी तुम्हारी लक्ष्मी प्यारी विष्णु-प्रिया ही जानो
यह उपासना करे सदा सत्ता को ही सच माने,
अपना सब सौन्दर्य मान गुण वरण करे यह उसको
शक्ति सहित पाखण्ड युक्त जो हरण कर सके इसको -

वही प्राप्त करके मुझको शासक शोषक ही बनता
स्वयं स्वार्थ का रूप सजा सबका उन्मूलन करता,
और बटोही का स्वरूप धर अन्य मनुज तब आता
चक्र सदा ऐसे चलता है ऐसे चलता रहता -२२-

जग में धरा धान्य धन-वैभव सुपर्याप्त सब भर का
प्रकृति प्रिया सुख थाल सजा कर भरण कर रही सब का,
विकृत मन संकल्प विकल्पों से मानव बस मरता
भाग दूसरों का लेकर के भाग्य-शेष ही करता -२३-

जग में जितना भाग हमारा भाग्य वही है मेरा
सुपर्याप्त सम्पूर्ण रूप से सबका मेरा तेरा,
किन्तु न कर सन्तोष मनुज सुत हरण मरण करता है
दुःख का हेतु मनुज का जग का हमें यही लगता है" -२

अद्भुत जोड़ी जुटी हुई थी आश्रम के प्रांगण में
तपःपूत सात्विक स्वरूप ले ब्रह्म-तेज आनन में,
ज्ञानदेव शुभ मूर्तिमंत सत् के स्वरूप ही लगते
जटाजूट कौशेय वसन यज्ञोपवीत से सजते -२५-

श्वेत वसन धर करुणा रानी करुणा सदृश बनी है
नयन नमित है सिक्त अधर है भौहें मदिर बनी हैं,
चन्द्रानन सा विहँस रहा उसका कपोल हीरक सा
ब्रह्मचर्य का तेज टपकता तेज पुंज तापस सा -२६-

हेम वर्ण लक्ष्मी रानी का पीताम्बर परिधान मयी
पन्ना नीलम मूंगा मोती हीरक औ माणिक्य मयी,
श्वेत सुमन की माला सर में गुथी हुई शोभित ऐसे
शीश जटाओं में महेश धर त्रिपथगामिनी को जैसे -२७-

उसकी बॉकी हृदय हारिणी छबि को देख मधुप भूलें
हैं प्रयत्न किस वायु-वेग से उसके आनन को छू लें,
प्रकृति विवश हो देख रही है रजस रूप लावण्य मयी
लक्ष्मी का वैभव विलास सुख सम्पति शुभ ऐश्वर्य मयी -२८

ज्ञानदेव के जाने पर फिर बोल पड़ी करुणा रानी
''उपालंभ क्यों सखी कर रही मुझे लगी हो ललचानी,
भैया का वह तपःपूत आनन तेरे मन बैठ गया
उनके रंच व्यंग्य तब ही तो तेरे कान उमैठ गया -२९-

उनके आते ही तव आनन रक्तारुण हो नाच उठा
जाते ही सुन्दर कपोल मुखड़ा तव सखी उदास हुआ,
अरी सखी! क्यो छिपा रही नयनों की कोर, निहारो तो
देखूँ क्या क्या छिपा रही हो दिखा जरा उद्‌गारों को'' -३०-

''अरी सखी! क्या दासी मम हूँ? सहूँ अनादर कैसे
वरण करुँ क्या हरण करे जो? हृदय धधकता ऐसे,
दारुण बाड़व दहे सिन्धु को धूम्र बिना ही जैसे
तिस पर कहती सखी करूँ क्यों उपालंभ मैं ऐसे? -३१-

नहीं जानती मैं ललचाई या मुझ पर ललचाए
मेरे तेरे पास भला किस कारण से वे आए,?
नहीं बुलाने गई उन्हें थी बैठ पार्श्व में तेरे
तिस पर भी तुम सखी! चढ़ाती बात माथ ही मेरे -३२-

तेरे भैया तपःपूत हैं कर्मशील बलशाली
ब्रह्म-चर्य की किरण टपकती आनन महिमाशाली,
उन्हें प्राप्त कर मैं क्या, कोई धन्य मान सकता है
पर उनका हिय भाव कभी मानव न जान सकता है -३३-

पितु-गुरुकुल में रह कर सखि क्या यही सीखती तुम हो,''
''और सिखाओ नही सखी! मुझको जो सीख चली हो''
''चलो सीख लो यही सखी, तेरे हित मैं पति लाई
पाओगी तुम नहीं कहीं मम कर्म देव सा भाई' -३४-

करती कटाक्ष वे दोनो
मिल कर कर रही हँसाई,
ले सुमन सुमन सा झूमें
पा वृन्त मधुर तरुणाई -३५-

प्रयाण

कर्म देव की सक्रियता औ आग्रह भरी याचना मे
विनिर्दिष्ट हो गुरु-निदेश से जग-कल्याण कामना मे,
ताप-शमन शोपण निरसन औ साम्य-सूत्र को लाने को
चले अवध की ओर शान्ति मय जगती नई बनाने को -१-

मन्दगामिनी सरयू बहती, थी अतीत गाथा कहती
आर्य देश के पावन यश को अपने अंचल में भरती,
इसके पावन अम्बु कणों में शुभ अतीत है नाँच रहा
रघु दिलीप इक्ष्वाकु राम के अश्वमेध सब सॉच रहा -२

वीर- बॉकुरे नृप बालों के शत्रु दमन के शुभ संकल्प
तरकस तीर कमान ढाल औ अश्वारोहण नाग विकल्प,
उनके पौरुप का आलेखन करती उनकी स्फीति शिरा
रक्तारुण आनन सुचक्षु बलवती गरजती दिव्य गिरा -.

स्वाभिमान स्वातंत्र्य चेतना बल पौ... अवतार
उनके केलि विलास और कौतूहल मे बल अपरम्पार,
वीर आर्य के वीर-प्रसू वे वीर्य-वान वे धीरज वान
समर-सैन्य-विज्ञान दक्ष रण कौशल में अतुलित बलवान

कहीं यशोगाथा है उनकी छिपी तरंगो में इसके
उनके सत् संकल्प-दिव्य कर्त्तव्य दुकूलों में इसके,
वीर-प्रसूता वीर नारियों के कुंकुम हैं गिरे कही
रथ-धुरियों में कहीं हाथ का अंकन मोहे अभी सही -५-

इसके तट पर उटज-पुंज में गुरुकुल पड़े तपस्यालीन
वेद-पाठ वेद-ध्वनि जिनके अंग अंग मे रहता लीन,
उपनिपदों के सूत्र बने थे कहीं पुराणों के आख्यान
आर्य जाति के गौरव युग औ स्वर्ण काल का शुभ्र निशान

ज्ञात विश्व को एक सूत्र में बॉध-जीतने के उपरान्त
सुगठित सत्ता शक्ति दायिनी अन्त हुए सामन्त नितान्त,
विश्व-जयी रावण का वध कर किया सभी को अनुगामी
महाराज श्री मान राम समता ममता के थे स्वामी -७-

पुण्य-सरित सरयू के तीरे आर्य जाति का गर्व-स्थान
देवासुर संग्राम हेतु रथ चढ़ें करें रण को प्रयाण,
वीर-पत्नियाँ खड्ग हाथ में दे दे करती वरण वहाँ
समरांगण में विजय वरण हो मरण-वरण हो किधौं वहाँ

उसी सरित सरयू के तीरे आज निराशा नाँच रही
वर्तमान का दुःख देख लगता, अतीत था साँच नहीं,
अविश्वास शोषण असत्य अक्षमता का है राज्य वहाँ
सत्य हुआ 'सतयुग' समाप्त आया मानो कलिकाल वहाँ -९-

वर्त्तमान है दुखद भयावह प्रलय करी दुख बाधाएँ
शापित ताड़ित मनुज मूढ़ सम सहें विपति भव-बाधाएँ,
दुर्ग-त्यक्त भग्नावशिष्ट है राजमहल निःशेष हुआ
सैन्य कोष सब शिविर रिक्त हैं अश्व नाग रथ अन्त हुआ -१०

ऊँचे ऊँचे महल गिरे हैं और गिरे प्रासाद सभी
रम्य वीथियों का न पता है नामशेष हैं हुए सभी,
धनी छिप रहे भवन-कोर में बाहर डाकू चोर रहे
सेना के जो अंग कभी थे बने लुटेरे घूम रहे -११-

राज्य-शक्ति की निर्बलता से वही प्रमुख अब बन बैठे
न्यायशक्ति की तुला छोड़कर शक्तिमान बन कर ऐंठे,
सीधा सच्चा सरल मनुज ही लुटता आज चला जाता
नियम-बद्ध रहने वाला ही अधिक अधिक संकट पाता -१२-

सब व्यवहार विनष्ट हो गए नष्ट हुआ व्यापार सभी
कृषक वर्ग का शोषण जारी छोड़ भगे घर द्वार सभी,
आडम्बर औ दंभ धर्म में घुसे नीति का नाश हुआ
हिंसा ताडंव नृत्य कर रही और अधर्म प्रकाश हुआ -१३-

उसी सरित सरयू के तट पर नर समाज एकत्र हुआ
ज्ञानदेव के आवाहन पर बड़ी सभा हो रही वहाँ,
सब विचार कर रहे, वहाँ, क्यों दैन्य विषमता नाच रही
बहुत लोग थे वहाँ मानने को सच भी तैयार नहीं -१४-

जो जन नहीं चाहते सुनना
वे संख्या अवरूद्ध हुए,
देख रहे अतुलित मानव-नद
उनके सभी विरूद्ध हुए -१५-

विवाद-१ (श्रमिक-पक्ष)

क्या कहूँ अनजान प्रिय! हिय व्यथा पारावार
है दिखाता पथ दिवाकर ज्योति या तम-भार,
चन्द्र की पीयूप सम कर रजत तुहिनागार
कर रही तमसावृता सब दीन का संसार -१-

जिन शिखाओं को ललक कर देखता संसार
अरुण किरणों का जगाना स्वप्न से साकार,
कूकती कलगान कोकिल मदिर मलय समीर
नाचते कलहंस गाते भ्रमर सुमन समीप -२-

शंख-ध्वनि या वेद-ध्वनि या ईश की आवाज
सुन जगत जब मग्न होता कर रहा जो राज,
उसी सुन्दर काव्य मय क्षण में उठा हल हाथ
श्रमित तन विगलित हृदय लेकर वृपभ युग साथ

वृपभ के सँग वृपभ बन फाँड़ू अवान के गात
सहन कर हिम सम शिशिर औ अंशु का आघात,
चना अरहर मटर तिल गेहूँ उड़द जव धान
और उपजाऊँ अपरिमित अन्न का भंडार -४-

जिसे पाकर क्षेत्रपति का नाचता संसार
काव्य में रत, केलि में रत, रति-प्रिया का हार,
संग में परिजन, असीमित सैन्य दल का भार
भूमिपति है नृपति बनता दे हमें दुख भार -५-

ये भवन प्रासाद शुभ यह यंत्र तंत्र महान
अस्त्र औ औजार सब हमने बनाया यान,
रक्त का गारा बना औ हड्डियों की ईट
स्वेद जल से सींच कर हमने उठाया भीत -६-

प्रिय विरह सुत दुख वरण दुख यम सरित पितु दान
पर्व उत्सव रहित मन ले दुख व्यथा अपमान,
कर रहा बलिदान अपने को सकल विधि आज
और मेरे मूल्य पर जग कर रहा है राज -७-

हम बजाते हुक्म मालिक का नवा कर शीश
प्राण देते दौड़कर बस प्राप्त कर निर्देश,
अस्मिता अपनी मिटा हम जी रहें बन दीन
उदर की उद्दाम ज्वाला हृदय दुख में लीन -८-

काटते लकड़ी विपिन में बेंचते आ ग्राम
काष्ठ विक्रेता नगन-तन बोझ का संग्राम,
खनिज खनि लोहा निकालूँ कोयला का भार
बालुका पाषाण वसु खनि खनि धरा के पार -९-

रत्न गर्भा अवनि से लड़ रत्न लाऊँ साथ
उदधि से भिड़-भिड़ निकालूँ रत्न अपने हाथ,
जीव की सेवा करूँ बन बाल शुभ गोपाल
प्राप्त कर मेरा कठिन श्रम विश्व मालामाल -१०-

किन्तु, हलवाहा श्रमिक शोषित हुआ बन दीन
सकल विधि होकर तिरस्कृत औ उपेक्षित हीन,
उधर कोलाहल कलह औ केलि-रति में लीन
इधर व्याकुल क्षुधित शोषित नग्न तन अतिदीन -११-

धर्म आया जगत में दुख मेटने को तात
ज्ञान शुभ अध्यात्म का देता हटा कर गात,
ईश का आधार औ श्रद्धा जगा कर साथ
है मिटाना स्वत्व, बॅहकाता हमारा माथ -१२-

मिटी कितनी व्यथा जग की अब तलक हे नाथ
मिले अभिनव कष्ट कितने धर्म का पा साथ,
"धर्म के पथ से मिलेगा ईश?' यह अज्ञात
"धर्म से विद्वेष शोषण कलह बढ़ता' ज्ञात -१३-

धर्म जो आया धरा को धारने बन सेतु
प्राचीर सम बॉटे मनुज-सरि मिलन का जो हेतु,
धर्म के भी नाम पर जग मे हुए संग्राम
मरें अगणित लोग बॅटते देश औ पुर ग्राम -१४-

धर्म पतियों को दबा कर उदित हों भूपाल
सभी सत्ता सम्पदा हथिया लिया औ माल,
एक जन का राज्य हो या बहुत जन का तंत्र
श्रमिक औ सामान्य जन रहते सदा परतंत्र -१५-

लोक या जन तंत्र बनता राजतंत्र मलीन
चतुर धनपति और दलपति उसे जाते लील
पिशुन गण बन्दी सदृश उसका करें गुणगान
धूर्त्त दलपति से बनाते उसे मनुज महान-१६-

शान्ति की वट-छॉव तर सोया गरल अन्याय
आवरण जग की व्यवस्था नाम पर है न्याय,
किन्तु वह है रीति शोपण की श्रमिक की तात
जोंक सम सब रक्तपी करते निबल मम गात -१७-

सुबह उठ कर शान्ति मे धो ऑसुओं से गाल
भूख मे रोते सुवन को करें क्रुद्ध हलाल,
वही सुत! जिसके लिए सारा जगत विक्षिप्त
हर्ष औ सुख मय भविष्यत् के लिए श्रम-लिप्त -१८

प्रकृति के स्वर्णिम सुखद हिय में भरे आह्लाद
या पुरातन जन्म निज करके यहाँ कुछ यांद,
कुहक कर शिशु सुवन मन जब नाचता निज भार
जगन जिससे हो प्रफुल्लित मान प्रभु आधार -१९-

दसन की वर पंक्तियों से तड़ित का आभास
और लहराता हिलोरे सिन्धु की मृदुहास.
चपल चितवन चंचला सी स्वयं बन उपमान
प्रेम से अभिभूत वह मम तनय है मन-प्राण -२०-

सकल जग निज तनय हित निज को करे बलिदान
और पहुँचाए अपरिमित सुखद-सुख, सुख-भार,
यह महल अट्टालिका प्रासाद भूमि अपार
स्वर्ण-रौप्य अथाह सम्पति रत्न राशि अपार -२१-

उसी सुत को देख कर मम मन सहे परिताप
सोंच कर उसका भविष्यत् मन दहे सन्ताप,
देख कर किलकारियॉ नाचे न मम मन मोर
कुहक कल अठखेलियॉ देते हृदय दुख-घोर -२२-

कहॉ से उसके सुखों को सॅजो रक्खूॅ पास
भला कैसे दे सकूॅ उसको सुखद मृदु-हास,
कहाँ से रख दूॅ कमा कर कोष उसके नाम
दुर्भाग्य के बे-बस क्षणों में उसे आए काम -२३-

महा बेकारी निठल्ला पन गरीबी घोर
बॉधने को शिशु-सुवन को दीनता का जोर,
साफ दिखना है हमें शिशु सुवन कुहकुनि मध्य
रुदन ऋण सन्ताप बेकारी जवानी मध्य -२४-

जगत की अर्द्धांगिनी शिशु सुवन की जो मातु
चन्द्र सी कमनीय औ कल कंज सा है गात,
रूप रति सी जगत हित औ प्रेम का आगार
हृदय ले अरमान मानव मिलन विरह अपार -२५-

पूजते लक्ष्मी सदृश जिसको गृहस्थी मध्य
मित्र मॉ परिचारिका दारा बनी जग-मध्य
वही मेरी धर्मपत्नी मार खाती नित्य
श्रमित श्यामल तन दुखित पा बेबसी ही नित्य -२६-

रोटियॉ मोटी लिए औ साग-सब्जी हीन
नमक मिर्चा प्याज ले आये व्यथा में लीन,
जो हुई वृद्धा जवानी प्राप्त करते तात
झुर्रियॉ मय श्यामता मय प्रिया का है गात -२७-

काम पर आती हमारे मुझे देने हेतु
स्वप्न मे मिष्ठान्न हलुआ भोग आते याद,
मार्ग श्रम से थकित, मन में व्यथित, भूखा पेट
रो रहा उसका सरल मन, विवश मुझको देख -२८-

कभी नृप भूखा रहा बस वीरता के हेतु
किन्तु हम भूखे भला, किस हेतु प्रिय किस हेतु,
श्रम करें दिनरात हम पर रहे भूखें नग्न
बिना श्रम सुख-भार से अवशिष्ट जग है मग्न -२९

हेतु क्या इसका भला? मम विपति का क्या मर्म
हर्ष पाने के लिए कितना करूँ मैं कर्म,
जहाँ तक हूँ जानता, है एक कारण मात्र
व्यथा का परिताप का दुर्भाग्य का संत्रास -३०-

धन छिपाया धनिक गृह भू गई गृह भूपाल
श्रमिक के माथे लिखा दुर्भाग्य महा कराल,
राज्य सत्ता के सहारे लूट है अविराम
स्वयं को कहते उधारक पुलिस सैन्य महान -३१-

वर्ग बनता नित नया अवशोषकों का तात!
शक्ति हिंसा दण्ड की हथिया रहें प्रिय तात,!
नींव में अट्टालिका की श्रमिक है होता दफ़न
उठ रही अट्टालिकाएँ छीन कर मानव कफ़न -३२-

जब तलक नूतन व्यवस्था नहीं आती तात
जब तलक ये लूटने वाले न मिटते तात,
जब तलक धन शक्ति फिर हो धनिक चंगुल मुक्त
जब तलक भू मुक्त हो ना संचरे उन्मुक्त -३३-

जगत में समता प्रतिष्ठित और नव-निर्माण
वर्ग जाए राज्य जाए जगत शोषण हीन,
श्रमिक कुल का राज्य आए द्रव्यपति का नाश
तभी जग सन्तुष्ट हो औ नाश हो संत्रास -३४-

सुन कर बात श्रमिक की
जन मन मग्न हुआ जाता था,
मानो शब्दों की ज्वाला से
सब सन्ताप जला जाता था -३५-

विवाद -२ प्रतिउत्तर(सामन्त)

"कहा श्रमिक ने बात हृदय की व्यथा वेदना-दुख की
कुण्ठा की संत्रास ताप-परिताप-तप्त-जीवन की,
और धर्म की धरा धाम की नृपति नीति की सब की
अर्थ नीति की नए शास्त्र की सभी तरह से सब की -१-

किन्तु न इसने अपने अन्तस् की सुगाँठ को खोला"
एक वृद्ध सामन्त क्रुद्ध बैठे-बैठे ही बोला,
"अपने दुख से नहीं दुखित होकर इसका मन डोला
मत्सर से भावाभिभूत हो हृदय कलुष है घोला' -२-

मन में मत्सर का मयूर सानन्द नाचता इसके
और द्वेष दावाग्नि हृदय में धधक रही थी जिसके,
नहीं सत्य उद्गार हृदय का इसने है दिखलाया
मात्र क्रोध के वशीभूत हो इसने है धमकाया -३-

इसने की है बात धर्म की किन्तु न देखा उनको
शीत ताप वर्षा सहर्ष सह दिया स्वयं जीवन को,
पुण्य व्रतों के नाम से रहें क्षुधित तृषित कानन में
वस्त्र-हीन कौपीन मात्र पर तेज लिए आनन में -४-

जिसने रट-रट शास्त्र ज्ञान को अब तक जीवित रक्खा
दिन को रात्रि, रात्रि को दिन में योग-शक्ति से रक्खा,
घोर तपस्यार्जित सुज्ञान को जग तक है पहुँचाया
और असीमित ज्ञान शिखर को कर सुसाध्य दिखलाया -५-

उनका देह देह इनके से अधिक न सुख पाता है
कहीं अधिक ही दुःख ताप औ शीत सहन करता है,
मिलता है क्या उन्हें भला, सन्नाम मान पावनता
मान और अपमान मान सम भिक्षाटन ही करता -६

शेष जगत इतने सुज्ञान की कितनी कीमत लेता?
महल अटारी वैभव औ सुख का अम्बार लगाता,
धरा धाम वाहन परिजन जग उनको अर्पित करता
किन्तु हमारे यहाँ सन्त ज्ञानी भिक्षाटन करता -७-

मनुज अलग कर पशु श्रेणी से सुन्दर जगत रचाय
मन की परम तरलता तज चित-रोक ठोस पन ल
ब्रह्मचर्य व्रत और तितिक्षा से विकाम-पथ पाया
परा शक्तियॉं वशीभूत कर नव भविष्य दिखलाया

विद्या और ज्ञान की खातिर इनको रखना पड़ता
छोड़ इन्हें क्या नर समाज आलिंगन कर ले जड़ता,
इनके ज्ञान तेज के कारण जग इनको झुकता है
नहीं झुकाते स्वयं किसी को जग खुद ही झुकता है -९-

इसने की है बात नृपति की? किन्तु न देखा उनको
अपना जीवन अर्पण कर के जिसने रक्खा सबको,
शूल मेल मुद्‌गर प्रचण्ड का वार सहा है तन में
कोदण्ड वज्र की महामार से मरा हर्प ले मन में -

जिसका पावन रक्त धार इतिहास बदल है देता
देशों का भूगोल बदलता मानचित्र नव बनता,
अरि प्रचण्ड करवाल हेतु निज मस्तक अर्पित करता
पर अपने पावन स्वदेश-स्वजनों की रक्षा करता -११-

रण में काटा जिसने बढ़ करके खूनी अरि मस्तक
रण मेरी दुंदुभि-नाद खड्‌ग है खड़क रही सप्तक उ
चल रहें बाण विकराल ढाल ले खड़ा वीत-भय र
आक्रान्ता को बेहाल किया अपने पौरुष कौशल से

वीर-प्रसविणी ललनाऍं भी जौहर-व्रत हैं करती
रिपु समक्ष झुकने के बदलें चिता स्वयं ही चढ़ती,
अपने लोहू के कुंकुभ दे पिता पुत्र रण भेजें
और स्वयं को अग्नि-समर्पित चिता सेज ही सेजें -१३-

इसकी रमणी के मुकाबले व्यथा उन्हें मिलती है
इनके तो प्रिय पास रहें, पर मृत्यु उन्हें मिलती है,
बैधव्य निराशा से उदास रहना ना जिसने सीखा
उन माताओं की गरिमा से है समाज नित जीता

जहाँ त्याग है जहाँ मृत्यु है जहाँ कष्ट भारी है
वहाँ खड़ा है रक्षक अपना नृपति मुकुट धारी है,
सभी प्रजा हैं सुवन सदृश जिनका रक्षण वह करता
निज को कर उत्सर्ग देश जन का अभिरक्षण करता -१५-

उसी वीर रक्षक योद्धा का वरण जगत करता है
औ सहर्ष सम्मानयुक्त संभरण सदा करता है,
देता है अधिकार उन्हें सद्धर्म न्याय रखने को
और व्यवस्था की खातिर मजबूर नृपति रखने को -१६-

अगर न होगा नृपति भला तब क्या समाज की गति हो
सभी लड़ पड़ें आपस मे बस रणस्थली पग पग हो,
रात्रि दिवस हो मारकाट संग्राम त्रास हो जग मे
मत्स्य-न्याय जंगल-विधान निर्बल का नाश प्रबल हो -१७-

नृपति नहीं है व्यक्ति मात्र, वह तो संकेत प्रकट है
उसके पीछे समिति, न्याय औ शास्त्र शक्ति सगठ है,
सभी राज सेवक उसके क्या कही व्यक्ति-निष्ठित है?
करते हैं वे कर्म देश सद्धर्म न्याय-निष्ठा मे -१८-

एक मनुज अल्पज्ञ मूढ़ भी रोर उठा सकता है
औ सुशक्त सम्राट नृपति पर दोष लगा सकता है,
उसकी वह आवाज कारगर होती देखा जग ने
२- भेज दिया था महाराज प्रभु ने सिय माँ कानन मे -१९

जिस सीता के लिए भयंकर समर दैत्य से कीन्हा
राजधर्म के लिए उसी सीता को कानन दीन्हा,
औ विछोह का अमर-ताप अपने अन्तस् मे लेकर
राज-धर्म की बलि-वेदी पर हृदय समर्पित कीन्हा -२०-

महाराज महिषी कोशल की वन एकाकी खोई
गर्भवती निष्कलुष सीय निसहाय विजन में रोई,
प्रिय विछोह का अमर-ताप, संत्रास हृदय में लेकर
४- मात्र भाग्य वश दैन्य हाथ पड नही, देह को खोई -२१-

कौन आकलन कर सकता प्रभु के दुख दर्द व्यथा
तरस गए लवकुश सुत के शिशुपन के शुभ दर्शन
सीय मातु भी कभी न सुत को सत्य बता सकती
रणस्थली ही पिता पुत्र का मिलन करा सकती थ

इसने की है बात श्रेष्ठि की? किन्तु न देखा उनको
लाख लाख की हानि सहन कर भी रखते जो धृति को,
विलख-विलख कर रोना जिसने जग में कभी न सीखा
अमित हानि सह साख बचाया लेकिन कभी न चीखा -२३-

अपने शुभ कर्त्तव्य कर्म मे सदा महाजन बनता
नगर श्रेष्ठि मुद्रा रक्षक नृप-कोपपाल भी बनता,
जग के सब व्यवहार चलाता दान धर्म भी करता
राज्य शक्ति को कर दे देकर शक्ति-वान भी करता

अरे चाहता मूढ़ श्रमिक क्या? धनिक धनो को छोड़ें
इन दासो को द्रव्य दान कर जगती से मुँह मोड़े,
और धनों को मूढ़ लोग ये सुरा-निछावर कर दे
कलह केलि प्रमदा प्रमाद मे सभी नाश ये कर दे -२५-

यद्यपि सेवा का सुधर्म भी उच्च बना है जग में
पर कठोर है अन्य सदृश ही मूल्यवान अग जग मे
सेवा के सब काम जगत मे हमको रखना होगा
संख्या मे रख अल्प-क्षुद्र सा रुद्र न रखना होगा -

सेवक संख्या कम रखने में अंकुश रखना होगा
कर कर सारे संस्कार द्विज उन्हे बनाना होगा,
पशु-श्रेणी सम देह-भाव का तर्ज मिटाना होगा
मन मे बुधि से काम करा सच मनुज बनाना होगा -२७-

सभी तरह से तुष्ट पुष्ट सन्तुष्ट किया जाना है
पर रखना है अवशि उन्हे निर्भ्रान्त रूप लाना है,
जग मे जितने काम हाथ से ही होने वाले है
यंत्रोद्भव तक मित्र नित्य कर से होने वाले है -२

आज श्रमिक जो खिन्न खड़ा उद्भ्रान्त विवश सा दीखे
भाग रहा जन रव समाज से खड़ा विपथ मे दीखे,
उसके पीछे मात्र यही कारण मुझको लगता है
कामचोर ईर्ष्याभिशप्त बस छली बली लगता है -२९-

वाचाल ! अरे झूठा है- दोषारोपण सब झूठा
कलिकाल बुलाता है तू- सतयुग तुझसे सच रूठा
तू अरे महान प्रपंची- क्या तर्क जाल फैलाया
सीधे सादे मानव को- क्या ही तूने बहकाया -३०-

जग अर्थ नीति पर चलता- अपना ही श्रम सब पाएँ
सब निज का स्वत्व बनेगा- जितना ही अधिक कमाएँ
जो मद्यप और जुआरी- श्रम चोर आलसी होवे
जो दंभ-प्रदर्शन में हो- जो व्यसन पालते होवें -३१-

व्यय करें प्राप्ति से बाहर- ऐश्वर्य-प्रदर्शन करते
वे क्यों न ऋणी बन जाएँ?- सम्पत्ति रहित हो जाएँ?
क्या बोनस ब्याज किराया- वेतन लाभांश सुलगता
श्रम के प्रेरक जो जग मे- सब तुम्हे गलत ही लगता -३२-

मानव समाज तज हिंसा- जब अर्थ-लोभ पर आया
कर मान्य साध्य साधन सब- विकसित झंडा फहराया
अब चले तोड़ने उसको- फिर से हिंसा लाने को
सब न्याय नीति नाशक हो- विशृंखलता पाने को -३३-

बस जल्दी सभा छोड़ दो- उठ जाओ बस उठ जाओ
बन क्रोध अग्नि की समिधा- निज त्रिया न मूढ़ रुलाओ
तू जटा बाँधने वाले- यह क्या त्रिपुण्ड दिखलाया
सुख शान्ति सिन्धु नर-जग मे विष कलह घोलने आया -३४-

बस उठो-उठो उठ जाओ
यह सभा छोड़ भग जाओ
अन्यथा दण्ड भागी हो
भरपूर न्याय को पाओ -३५-

संघर्ष (उन्माद)

कह रहा सामन्त जब अति क्रोध मे यह बात
भीड़ मे फैला महा उद्वेग औ उत्पात
भीड़ जो अब तक रही बैठी सिमट मिल साथ
दूर होती जा रही थी उठ रहे थे हाथ -१-

बॅट रहा मानव, मनुज ही हो रहा था दूर
कार्य करता अब दनुज सा बन रहा अति क्रूर
तर्क मारे सब जनो के हो रहे थे क्षीण
क्रोध में परिताप में सन्ताप में थे लीन -२-

चाहना सुनना नहीं कोई किसी की बात
सब सुनाना चाहते है स्वयं की ही बात
एक कहता "कह रहा सामन्त सच्ची बात"
एक कहता "है बहुत ही श्रमिक की सच बात" -३-

एक को दिखना जगत मे ताप ही बस-ताप
एक को खलता मनुज का महा परसन्ताप
एक जग को देखता है शूल का प्रतिरूप
एक को लगता तुम्हारी भूल के अनुरूप -४-

पी रहा शिशु जो जननि का स्नेह मे ही दूध
प्रेम मे पय पान कर वानी जननि अभिभूत
एक इसमे देखता सुकुमारता का रूप
बाप माँ के प्रेम के वात्सल्य का प्रारूप -५-

कुहकते शिशु की सरल चितवन मनोहर रूप
मोह लेता उभय मन सब दुःख जाते भूल
उसी के भावी भविष्यत् के लिए श्रम-युक्त
क्लेश पाएँ व्यथा पाएँ हर्ष से हो युक्त -६-

एक को लगता वही यह मानवी संघर्ष
जननि से पय छीन कर शिशु कर रहा उत्कर्ष
अगर शिशु मे छीनने का गुण न होवे शेष
बढ़ सकेगा वह नहीं तन मन बने निःशेष -७-

सूर्य मे है छीनती रवि रश्मि सारी सृष्टि
ये लता तरु गुल्म छीने मेघ से भी वृष्टि
छीनना, संघर्प, जग की प्रगति का है मूल
लुटें, मिटती, जातियॉ जो इसे जाती भूल -८-

भूल से कोई अगर संघर्प का पथ छोड़
चाहता जीना विभव से शक्ति मे मुँह मोड़
दुःख पाए व्यथा पाए हो अ-वश बे-बश
लूट ले उसको अपर संसार बस बर-बस -९-

सत्य है संघर्प का सिद्धान्त चिर-शाश्वत
वर्ग का सघर्प लाता स्वर्ग का शासन(सु + वर्ग = स्वर्ग)
बस उसी मे मनुज का उद्धार है अविकल
यह नियम शाश्वत् सनातन चिर अटल अविचल -१०-

एक को सह-कार का पथ दीखता निश्चल
मनुज पशुता तज बढ़ा सहकार का ले बल
संघर्प को वह मानता अति पाप का कारण
संघर्ष ही नव-नव समस्या का बना कारण -११-

फुसफुसाहट घुन-घुनाहट और फिर हुंकार
कहीं स्तुति है कहीं निन्दा कहीं जय-जयकार
दो दलों में बॅट चुकी थी भीड तो अब तक
लग रहे नारे विरोधी जोर दे दे कर -१२-

'श्रमिक की जय हो' पराजित हो धनिक सामन्त
'बुर्जुओं का नाश हो' औ 'कुलक का हो अन्त'
एक चिल्लाता जिए जनतंत्र 'जीते-तंत्र'
न्याय अनुशासन जिए जीते सनातन पंथ -१३-

छीन लेना चाहता है शक्तियाँ सब एक
है बचाना चाहता सब अपर रक्षक-एक
छीनना, अपहरण हिंसा एक का हो धर्म
एक को खलना अयश अपकृत्य और अधर्म -१४-

छीनने को जो जरा सन्नद्ध तत्पर-घात
छीनते अनिरुद्ध कर कर घात औ प्रतिघात
बगल में जो भी खड़ा हो शक्त या बलहीन
छीनते सब का, धनिक सामन्त हों या दीन -१५-

स्वयं का उत्कर्ष बनता अपर का अपकर्ष
मच गया संघर्ष चहुँधा मच गया संघर्ष
क्रोध का, आवेश का, उन्माद अति बढ़कर
हो रहा है शोर ही बस शोर अति भयकर -१६-

शोर के ही साथ में फिर उठ पड़े थे हाथ
मूढ़ जैसे कृष्ट-रण मे भिड़ पड़े थे हाथ
चल रहे पाषाण चहुँदिशि चल रहे पाषाण
लग रहे पाषाण करते घाव, लेते प्राण -१७-

मच रहा हुंकार औ हुंकार ही चहुँ ओर
मृत्यु की विकरालता संसार का संहार
ले लिया यम ने मनो कर में कठिन कोदण्ड
वज्र ले जग नाशने को लिया रूप प्रचण्ड -१८-

ले लिया शस्त्रादि कर में वीर-रण उत्सुक
धर्म-रण सा मान कर बलिदान को प्रस्तुत
दो विचारों में परस्पर वाद औ प्रतिवाद
लड़ रहे सब तर्क तज औ छोड़ सब संवाद -१९-

शब्द की सब शक्तियाँ होकर अधीर मलीन
लक्षणा अभिधा विलोपित व्यंजना भी दीन
वज्र का औ वाण का तलवार का अति ज्वार
बाहुबल पशुबल प्रकम्पित कर रहा हुंकार -२०-

जो थके भागे समर से हारते वे क्लीव
वीरता के हेतु निज तन त्यागते बन वीर
शत्रु हन्ता, अरि-निकन्दन, रिपु निषूदन हेतु
वीर नायक बन सके लड़ते इसी के हेतु -२१-

मच गया भीषण समर बन वर्ग का संघर्ष
लड़ रहे सब मान कर उत्कर्ष ही उत्कर्ष
दीन जन सब जुट लडे, मारें धनिक सामन्त
है न इसका अन्त कोई है न इसका अन्त -२२-

वीर घाती औ शतघ्नी चल रहे है वाण
ज्ञान से विज्ञान से सब लड़ें ले पाषाण
मनुज गिरता जा रहा है धरा होती लाल
रक्त की धारा प्रबल नर-बन-बहे पामाल -२३-

कहीं कोई भट गिरा कट कर अलग है हाथ
रुण्ड भी है मुण्ड भी पर झुण्ड में सब साथ
कट रही ग्रीवा सुभुज औ कट रहे है कान
किन्तु लड़ते जा रहे बस मान शुभ बलिदान -२४-

जो गिरा फिर उठ न पाया नहीं सम्बल साथ
जो क्षुधित है, तृपित है, वह है, मुमूर्ष अनाथ
पाँव के नीचे कुचल कर मर रहे है वीर
दूसरो को मारने को जो रहे गंभीर -२५-

मरे मानवता मनुज की उभय दल के बीच
'ज्ञान' की औ 'कर्म' की सुनते नहीं रण-बीच
द्वेष की मत्सर घृणा की बेल बढ़ती जाय
कालिका खाती मनुजता कालिका जग खाय -२६-

हो रहा भीषण समर अब ज्ञान के सम्मुख
रोकने को दौडते बौछार के सम्मुख
है मनुजता पर लगा अज्ञान का बन्धन
'कर्म' का औ 'ज्ञान' का मानें नहीं बन्धन -२७-

विवश बेबश दीखते है ज्ञान अब केवल
किन्तु हैं सायास ले कर कर्म का सम्बल
ज्ञान-कर्म समुच्चयी आधार के कारण
है मनुजता आज जीवित आश के कारण -२८-

विषाद

खेल रहीं थी करुणा लक्ष्मी मृग शावक सँग उपवन में
कूक रहे थे शुक पिक, केकी नृत्य कर रहा गुरु-वन में
कैसा तेरा रूप सुनहला 'मोनू' लगते हो प्यारे
चंचल नयन डरे से लगते हैं जो सुन्दर कजरारे -१-

तृतिय प्रहर मध्याह्न बाद भगवान भास्कर उतर रहे
तरु पुंजों मे, कुंज पुंज मे, ताक झाँक क्षिति पहुँच रहे
त्रिविध हवाएँ मदिर-मदिर सी नाच नाच कर पुलक रहे
श्वेत श्याम शुभ धूप छाँव पा प्रकृति नवेली हुलस रही

'आओ तेरा चुम्बन ले लूँ' कहकर लक्ष्मी विहँस उठी
'आओ तेरा पुलक स्पर्श लूँ' कहकर उससे लिपट उठी
तेरी ही छवि को विलोकने आज रुक गई आश्रम मे
देखो तुमको छेड़ रही है मैना तव पीठासन मे -३-

दौड़ रहा वह केकी 'नर्तक' कहता शुक सोनू प्यारे
किन्तु न बोलो मौन लिए क्यों मौन मौनता जिमि धारे
"हाँ हाँ रुकी इसी की खातिर, खातिर दारी पूर्ण करो
जिसके दर्शन को ललचाई उसका मन परिपूर्ण भरो' -४

"सखी सलोनी करुणा रानी बात तुम्हारी है अच्छी
किन्तु न जाने मन उदास क्यों बात नहीं लगती अच्छी
प्रकृति स्वकृति सी नाच रही है पर विषाद छाता मन में
पता नहीं क्यों चित्त क्षुब्ध है शंकाओं के सागर में" -५-

करुणा उसकी बात श्रवण कर दुख से सहसा ठहर गई
तभी वहाँ पर लज्जा आई आ कर सत्वर कँहर गई
पुनः जोर से रोकर बोली 'ज्ञान' 'कर्म' को चोट लगी
अवध ग्राम में युद्ध मच गया जनता चारों ओर भगी

सोमेश्वर के साथ जनेश्वर गुरु प्रदेश मे आया है
बना वहाँ का सारा वर्णन अति विषाद ही लाया है
सुनते ही युग मूर्ति देवियाँ करुणा करके विलख उठीं
सत्वर गुरु चरणों में जा कर अश्रु बहाती परम दुखी -७-

रोने देख उन्हें सब रोए मृग शावक भी दौड़ पड़ा
चपल चखों से अश्रुपात कर चिन्तित सा हो वहीं खड़ा
शुक पिक मैना दुखित हृदय ले गुरु के चरणों में आए
सभी शिष्य करुणा लक्ष्मी सम रुदन करें सिर लटकाए -८-

पूँछ रहे थे गुरु विषाद से हुआ जनेश्वर क्या बोलो
क्यों चुप हो क्या घात तीव्र है सब रहस्य जल्दी खोलो
मेरे प्यारे 'ज्ञान' 'कर्म' हैं प्राणों से भी अति प्यारे
उन्हें त्याग कर जीवन कैसा? कैसे जग धीरज धारे -९-

अरे उन्हीं से धरा टिकी है शेषनाग के माथे पर
'ज्ञान' 'कर्म' बिन जगत व्यर्थ है औ कलंक है माथे पर
अद्‌भुत ज्ञान कर्म की जोड़ी आश्रम में पाया हमने
किन्तु उन्हीं का चिर वियोग सच में क्या है देखा तुमने -१०-

अरे चले तुम क्यों यों आए भाग वहाँ से आश्रम में
तेरे नायक जूझ रहे जब, तुम्हें काम क्या आश्रम में
कितनी भीषण बड़ी और फिर क्यों यह हुई लड़ाई थी
ज्ञान कर्म ने उन्हें न रोका, कैसे छिड़ी लड़ाई थी -११-

किन्तु न बोले उभय शिष्य तब गुरुजी मग्न विषाद हुए
उधर युगल सखियों के मन हैं ताप शाप सन्ताप लिए
भभरि उठा है वदन सुभग रो रोकर आँखें सूज गई
आँसू झरते सहा उत्स से विरह-वेदना तीव्र हुई -१२-

"तेरे बिन है जग सूना - क्यों देते नहीं दिखाई ॥
तुम वहाँ पड़े हो आहत - मम हेतु तमस अधिकाई ॥ -१३-

तुम गए वहाँ सुख देने - सारी धरती को जग को ॥
वैषम्य दीनता भारी - सब चले मिटाने जग से ॥ -१४-

जग का निराश जीवन लख - लख मनुज लोक की विपदा
तुम गए दौड़ सुख देने - मैं सहूँ विरह चिर विपदा -१५-

हे सूर्य दिवाकर रवि हे - हे नाथ अंशुमाली हे ॥
तुम देख रहे सब जग को - मेरा ही जग खाली है ॥ -१६-

हे वरुण पवन धनधारी - क्षिति गगन तेज पावक हे ॥
मम प्रिय को सुखी बनाओ - सब के रक्षक पालक हे ॥ -१७-

चहुँ ओर अँधेरा छाया - नैराश्य तमस घिरता है ॥
शंकाएँ मन में जलती - प्रिय रूप हृदय निरता है ॥ -१

मेरे अन्दर है बाहर - आँखों में वक्ष-स्थल में ॥
बस बसी मूर्ति उस जन की - मैं देख रही हर थल मे ॥ -१९-

रोते ही रोते लक्ष्मी - करुणा थीं कहती जाती ॥
गुरु का हृद-तंतु फटे ही - पावनता घुलती जाती ॥ -२

वैराग्य योग सब छूटा - संघर्ष हृदय में उठता ॥
प्रिय का वियोग क्या चिर हो - सन्देह मनस में उठता ॥ -२१-

धर ध्यान योग से देखा - आहत मुकुलित चख पाया ॥
बोले "चलना ही होगा', यह योग भोग की माया ॥ -२

आगे हैं गुरु देव चलरहे लक्ष्मी करुणा साथ लगी
मृग-मृग शावक दौड़ रहे है ले ममत्त्व करुणा पगली
कोई नहीं बोलता कुछ भी चाह रहे किमि पहुँच सकूँ
एक कदम बनता युगान्त था आशंका के साथ दुखी -२३-

ऊपर है शान्ति दीखती
अन्दर मच रही रुलाई
हा कर्म! ज्ञान हा! हा! हा!
रोना भी करे रुलाई -२४-

निवारण

अवध ग्राम मे तुमुल नाद था द्वन्द्वो का संघर्षो का
सभी व्यवस्थाएँ समाप्त थी लगता था रण-वर्षो का
'ज्ञान' 'कर्म' का समझाना भी गया व्यर्थ उस काल वहाँ
कई घाव दोनो ही दल मे लगे ज्ञान को जहाँ तहाँ -१-

उछल कूद कर लोग लड़ रहे वर्ग-युद्ध वे मान रहे
धर्म युद्ध सा उसे समझ कर स्वर्ग-प्राप्ति सा जान रहे
जन जन का आक्रोश और जन रव बढ़वाता जोश वहाँ
समझदार भी हुए मौन थे गया सभी का होश वहाँ -२-

रण-स्थली मे दौड़ रहे थे शान्ति कराने ज्ञान वहाँ
कई घाव खा महावीर वह गिरा हुआ बे होश वहाँ
कर्म देव की सेवाओ से औ सत्वर-उपचारो से
फिरी चेतना ज्ञान देव की खुले नयन धीरे-धीरे -३-

देखा बैठे कर्म देव है चिन्तातुर सा वदन लिए
और निराशा की रेखाएँ नयन भाल पर वपन किए
व्यजन डुलाता एक हाथ है, एक हाथ सर सहलाता
सुन्दर सुतेज मय वदन शुभ्र कैसे स्वमित्र का कुम्हलाता-४-

उठकर बैठ गए सत्वर ही इधर उधर वे देख रहे
मानो स्वप्न लोक से आकर मर्त्य-जगत को देख रहे
बोले "मित्र दुखी मत हो मै पूर्ण रूप मे स्वस्थ सुखी
चलो बॉटना उनका दुखड़ा जो मानव है गिरे दुखी" -५-

"नहीं मित्र जल्दी न करो अब कुछ क्षण तो विश्राम करो
लोग दुखी है मूढ भाव से व्यर्थ लड़े वे वृथा, मरे"
"नहीं मित्र ऐसा न कहो मन उनका ऐसे त्याग करो
उन्हें शान्त करना ही होगा, उन्हे सखा मत कहो मरो -६-

सखा कर्म का श्राप अमिट है कभी न अंकन मिट पाए
अरे!! विधाता भी न वाम हो शाप ताप ना जग पाए
कह कर उठा वीर बॉका वह दौड दौड़ फिर समझाता
सबको करने लगा शान्त था सभी दिशाओ मे जाता -७-

"मुझको नहीं चोट का भय है नहीं खेद है घावों
सब जन बैठे शान्त-शान्त हो बात करें प्रतिदावों
मैं न लड़ाने को आया था नही भेद करने आया
व्यर्थ आप मब लड़े मरे हैं इससे कौन हर्प पाया -

धर्म युद्ध जो समझ लड़े थे, वर्ग युद्ध या इसे कहें
इसका नही अन्त होने का रण मे कभी न हर्प मिले
मानवता की मूढ़ मान्यता बस ही आप लड़ें मारे
विजयी बोलो कौन हुआ है, यहाँ सभी हारे-हारे -९-

हिमा के उत्तुंग शिखर मे शान्ति-स्रोत कब फूटा
प्रति हिंसा की ज्वाला से कब मिलता हर्प अनूठा
शान्ति प्रतिष्ठित कहाँ हुई अगणित रण के प्रागंण
युद्ध विजेता नर पतियों के अहंकार प्रांजल से -१

कहते हैं अन्याय शमन को युद्ध लड़ा जाता है
सदा पराजित भूपों पर असुरत्व मढ़ा जाता है
देव भाव का आरोपण बस मात्र विजेता पर करते
धूर्त्त विजेताओं का भी सम्मान महामुनि सा करते -११-

और असंख्य मानवों का तन क्षत-विक्षत होता है
सुत कलत्र को दुख प्रचण्ड दारुण रोदन होता है
अश्रु उदधि में मग्न जगत सुख सभी डूब जाता है
मनुज रक्त की धारा में मनुजत्त्व डूब जाता है -१२

एक भयानक महासमर के छुटे भस्म अवशेपों में
छिपा हुआ रहता कारण है अगले महासागर का
जिस दिन मंडित होता है श्री मुकुट विजेता का जग में
बीज उसी दिन पड़ जाता है अगले रण का फिर से -१३-

छोटे रण मे शुरू हुआ फिर और बडा होता है
उसमे भी फिर बड़ा और फिर महासमर होता है
हिंसा मे उन्मत्त नृपो के अतिप्रचार साधन मे
महायुद्ध फिर महायुद्ध फिर महायुद्ध होता है -१४-

किन्तु न कुछ परिणाम निकलता नहीं समस्या मिटती
दोप और अन्याय शमन की राह न कोई मिलती
एक ममस्या भी अब तक हल नहीं हुई है रण मे
स्वयं मनुज हल हुआ, महा बलिदान समस्या रण से -१५-

हिंसा में ही छिपा हुआ रण रक्त-बीज सोता है
ओढ़ आवरण जग के सुख का धूर्त प्रबल होता है
मिड़े महारण मे नर को लख, अट्टहास करता है
उधर बे-बसी में मानव सुत रक्त बहा मरता है -१६-

मनुज क्रोध के वशीभूत हो भिड़ता महासमर में
प्रतिहिंसा प्रतिशोध द्वेप की जड़ता युक्त अनल में
बल पौरुप के अहंकार से आता रण प्रांगण मे
काट रहा, कट रहा शीश क्रोधाभिशप्त कानन में -१७-

मनुज समस्या के निदान में कभी नहीं लगता है
अन्तर्निहित विरोधों मे वह डरा डरा रहता है
शान्ति हेतु लाता अशान्ति औ हिंसा रक्त-स्रवण है
न्याय हेतु अन्याय ला रहा कैमा मूर्ख प्रवण है -१८-

देवासुर संग्राम हुआ कितनी ही बार भुवन में
हारे देव, असुर हारे औ छिपे भगे त्रिभुवन मे
महाराज श्री मान राम ने किया नाश रावण का
किन्तु असुरता का समूल उन्मूलन कभी हुआ क्या ? -१९-

'सूचिकाग्र-भू' बिना युद्ध के नहीं है मिलना केशव
दर्प-युक्त दुर्योधन की यह अमिट प्रतिज्ञा केवल
दंभयुक्त बलवान भीम की विकट प्रतिज्ञा भी थी
हुआ महाभारत-रण भीपण ताण्डव युक्त मही थी -२०

अक्षौहिणी अप्ट-दश रण मे, नप्ट हुआ सारा था
गिनती के दश-पॉच वीर तज नप्ट हुआ सारा था
किन्तु बँटी क्या भूमि बराबर सब मे चिर शाश्वत थी
भरत-भूमि बन सकी धर्म भू? रोती नहीं सिसकती ? -२१-

नहीं युद्ध से किसी समस्या का हल हुआ जगत मे
नहीं युद्ध से हासिल होता कुछ भी लाभ जगन को
मिथ्या है अभिमान वीरता का चिर रण कौशल का
क्षात्र धर्म बस स्वर्ग प्राप्ति का नहीं मार्ग है रण का -२

मरने वाले से पूँछा किसने है महासमर में
कितने दुख परिताप वेदना का है भार उदर में
सुत कलत्र के चिर-विछोह की अरे! व्यथा कितनी है
जिजीविषा की इच्छा बोलो अभी तुम्हें कितनी है -२३-

केशव की वह बात युद्ध के पूर्व कही जा पाई
मान उसे श्रद्धा मे सबने कीन्हीं विकट लड़ाई
समर बाद अति व्यथा सिन्धु में अश्रु तरंगे पाकर
कौन सुनेगा बात स्वर्ग की अपने स्वजन गवॉ कर -२४

नर तन की रचना श्री हरि ने किया इसी कारण क्या ?
बना चराचर ज्ञात विश्व का, मुकुट, इसी कारण क्या?
जहॉ प्रेम से रहकर के जग स्वर्ग सदृश हो सकता
वहीं द्वेप हिंसा अमर्प से नरक बना है रहता -२५-

'शठ के प्रति शठता' का दर्शन जिस दिन माना जग ने
शठता को मान्यता मिल गई मानों अर्द्ध भुवन में
कौन फैसला कर सकता शठता की पहले किसने
शठता पर आरूढ़ जगत जब शठता लगे बरतने -२६

धर्म युद्ध में क्या-क्या शठता किया नहीं पाण्डव ने
महा धूर्त्तता को अपनाया धर्मराज सा नर ने
औ असत्य व्यवहार हुआ था कितना बोलो रण में
'धर्मराज' सा मनुज बन गया 'धूर्त्तराज' सा रण मे -२७-

अहंकार राक्षस ने मानों वास लिया नर तन मे
आत्म देव को भगा वहॉ से लगा जगत को छलने
द्वेप अनल दावाग्नि जलाता चले जगत बर-बस ही
मनुज मूढ़ सम दुःख उठाए मरे खपे बे-बस ही -२८

अरे !! न प्रिय! अन्याय शमन को कहीं युद्ध होता है
अरे!! सत्य ही जग में रण अन्याय हेतु होता है
युद्ध बाद अन्याय रहेगा युद्ध पूर्व वह रहता
और युद्ध के समय मनुज अन्याय असीमित सहता -२९-

महा सरीसृप और महागज मिटे इसी धरती से
पर पिपीलिका मधुमक्खी तिल चट्टे नहीं मिटे क्यों
सिंह-व्याघ्र उच्छिन्न हो रहे कभी कही सोचा क्या?
मिट जावे वह वंश, नहीं सहयोग भाव है जिसमें -३०-

हिंसा और युद्ध के साधन विफल हुए हैं जग में
समता शान्ति और शाश्वत सुख नही मिलेगा इन से
इनसे भिन्न जगत को कोई राह खोजना होगा
शोपण और विपमता का विपदन्त तोड़ना होगा -३१-

हमें न केवल हिंसा से औ रण से लड़ना होगा
वरन विपमता से शोषण से हमको भिड़ना होगा
सब जन को जो प्राप्य वही साधन अपनाना होगा
मुक्त मानवों को स्वर्गिक सुर दून बनाना होगा" -३२-

धीरे-धीरे बोल रहे
थी कृशती बढ़ती जाती
स्वर मन्द-मन्दतर होता
पावनता बढ़ती जाती -३३-

समर्पण

मानव संस्कृति का विकास-खग हिंसा डाली तज कर
चला असीम अनन्त गगन में सशंय मन में भर कर
हिंसा से संघर्ष समर में सारी आशा तज कर
चला आज अज्ञात मार्ग पर श्रद्धा के ही बल पर -१-

हिंसा और युद्ध के साधन विफल हुए यह सच है
किन्तु न कोई हैं विकल्प यह भी उतना ही सच है
कब तक उड़ता रहे गगन में बिना किसी सम्बल के
थक कर जब हो चूर त्रस्त फिर कहो कहाँ आश्रय ले

पुनः न लौटेगा हिंसा पर कौन भला कह सकता
जब तक अन्य मार्ग कोई निर्भ्रान्त नहीं है मिलता
क्षुब्ध त्रस्त संत्रस्त बनें जब कठिन समस्याओं से
क्यों न लौट फिर पड़े भला रण की परिचित राहों से -३-

नहीं समस्याओं का निरसन अब तक होता लगता
शोषण और विषमता का शाश्वत कुदंश ही डसता
मनुज कहाँ तक धैर्य धरेगा नूतन पथ पाने का
कहाँ हो रहा श्रम सु-साध्य नव-पथ विकल्प लाने ०

डरता है वह समझ बूझ कर हिंसा की राहों से
सर्वनाश संहार अटल है जग का रण-राहों से
जितना है विज्ञान ज्ञात बस सर्वनाश होना है
नहीं बचेगी मानवता सभ्यता नष्ट होना है -५-

इसी विषम भय से मानव बच सका अभी है रण से
यदपि मिला है नहीं उसे कोई विकल्प इस रण से
खोज रहा है भाँति-भाँति के साधन आज जगत में
कभी अहिंसा विश्व राज्य या कभी नीति-सम्बल ले

ऐसी विकट परिस्थिति में पड़ 'ज्ञान' कर्म जो करते
वही बन रही नव आशा, लघु रश्मि प्रकट वे करते
अब तक दे कर दुःख अपर को काम निकाला जाता
यहाँ स्वयं बहु हर्ष साथ सब कष्ट सहा है जाता -७-

कहते है यह मार्ग सत्य का धृति का करुणा का है
सत्य ग्रहण कर सत्याग्रह मॅग पंथ अहिंसा का है
यह करुणा-प्रेरित मानव की मानवता की सेवा
करते हैं बलिदान स्वयं का, ज्ञान कर्म बन देवा -८-

उनका लख निष्कलुष भाव निःस्वार्थ प्रेम भी जग से
उनका पावन रक्त धार चेतना ला रही जग में
क्योंकि मनुज है मनुज सदा चाहे जितना निर्मम हो
कितना भी हो कुटिल क्रूर या जातुधान निशिचर हो -९-

पर यदि वह है मनुज मनुजता उसमें शेष सदा है
सुप्त पड़े अन्तर्मन में उसके शुभ भाव सदा हैं
कैसे जागृत वह हो जाएं यही समझना होगा
हो कु-भाव से या सु-भाव से यही समझना होगा -१०-

चेतना शून्य लख ज्ञान देव को देख रक्त की धारा
करुणा के नव पंथ पथिक से पंथ पुरातन हारा
हार गई असुरत्त्व भीड़ की निमर्मता थी हारी
हिंसा ने कर दिया समर्पण लख सत् प्रेम पुजारी -११-

नहीं पुजारी है सुमूर्ति चेतना हीन पत्थर का
क्षीर-सिन्धु कैलाश सरोवर-मानस के वासी का
नव्य पुजारी मानवता का ज्योति लिए आशा का
चेतनावान औ प्राणवान भावना शील मानव का -१२-

क्षीर सिन्धु कैलाश महीधर के वासी सच्चे हैं
करते हैं वे त्राण प्रणत् का जो मानव अच्छे हैं
पर वे तो हैं ईश स्वयं उनको न रंच निज दुख है
किन्तु यहाँ लघु मनुज 'ज्ञान' है जिन्हें सभी सुख दुख है -१३-

बिना भेद के प्रणत शत्रु का यह उद्धार करेगें
देकर के सुख सर्व जगत को दुख को स्वयं वरेगें
रंच मात्र भी दुःख अपर को नहीं कभी देने को
मानवता के सब कलंक का जहर स्वयं पीने को -१४-

देख उन्हें चेतना वान औ फिर से श्रम अति करते
भूल रक्त की धार, घाव, निज प्राण होम वे करते
भीड इकट्ठी हो कर उनके पास खड़ी चिल्लाई
"क्षमा देव हो! 'क्षमादेव हो!' करुणा से अकुलाई -१५-

किया महापातक हमने है बात न तेरी सुन कर
मिथ्या कर आरोप और फिर घाव तुम्हें पहुँचाकर
पर पवित्र तव-रक्त-धार भू में जो बही अभी है
बिना द्वेष मालिन्य मनस के औ निःस्वार्थ सही है -१

नहीं जानते परमेश्वर किस वेष कहाँ पर आए
आज हमारे अवध ग्राम में रूप तुम्हारा लाए
किन्तु न पहचाना था पहले जाना केवल साधू
भिक्षा का आहरण कर रहे जैसे निपट असाधू" -१७-

अपनी स्तुति सुनने वाले है मनुज लोक में काफी
चेलो और चपाटों मे हैं स्तुति करवाते पापी
किन्तु ज्ञान की मूर्ति स्वयं बन ज्ञान देव जो आए
सुन सकते है स्तोत्र कहाँ सुन कर शरमा ही जाएँ -१

बोले "नर तो नहीं यंत्र वह तो चेतन प्राणी है
जड़ जंगम में अति विशिष्ट उसमें सुन्दर वाणी है
उसमें श्रद्धा स्नेह और सहकार संगठन-बल है
मधुर भावनाओ का संगम उसके अन्तस्तल है -१९-

तभी कभी बन सकता मनुज शिवि या दधीचि ऋषि व
हरिश्चन्द्र या रन्तिदेव बन त्याग किया सर्वस है
और भविष्यत् में सु-सन्त औ होंगे कई महात्मा
प्राण होम दें निज सहर्ष चढ़ क्रास या कि गोली खा

निर्विवाद है सत्य मनुज का शोषण है सम्पति से
निर्विवाद है सत्य मनुज का शोषण है सत्ता से
धर्म, अर्थ से और व्यवस्था से उसका शोषण है
हर सुधार मे हर विकास मे निश्चित ही शोषण है -२१-

जब भी सुख के हेतु मनुज ने था पग कभी उठाया
उसी उठे पग ने दूजे पग को था अधिक दबाया
उसी दूसरे पग की ताकत पर पहला उठ पाता
औ अम्बर या अन्तरिक्ष तक नाप नाप कर आता -२२-

सम्पति जिसके हाथ रही है शोषण किया उसी ने
सम्पति जिसके हाथ गई थी शोषण किया उसी ने
अतः हमें अनुराग नही स्वामित्त्व बदलने भर का
हमें विसर्जित करना है स्वामित्त्व भाव इस जग का -२३-

सत्ता जिसके हाथ रही है शोषण वही किया है
भले विभिन्न करों में पहुँची फिर भी वही हुआ है
सत्ता के परिवर्तन में हमको अनुराग नहीं है
सत्ता का सम्पूर्ण विसर्जन करना हमें सही है -२४-

सत्ता का ले बल सु-सैन्य औ हिंसा की राहों से
लूट रहे सत्ता सम्पति वाले जग को आहों से
दण्ड शक्ति औ सैन्य शक्ति को हमें हटाना होगा
इनके पोषक केन्द्रवाद को अवशि हटाना होगा -२५-

आज शेष है यह सब चीजे जग में बिलकुल सच है
किन्तु न इसमें दोष किसी का दोषी नही मनुज है
'वरन दोष अभिशप्त विचारे सहते पाप अपर के
हमें मिटाना नहीं मनुज, बस पाप मिटाना नर के'' -२६-

'धन्य धन्य हैं!' देव आप जो हमें बचाने आए
अहंकार अज्ञान निराशा द्वेष मिटाने आए
धन्य ! आप है धन्य! गुरु जी धन्य अवध आश्रम है
हुए जहाँ तब सदृश महानर!' 'कहती भीड़ प्रखर है'' -२७-

आ गए गुरु बन वहाँ सच स्नेह करुणासींव
हैं विकम्पित हृदय में औ ले विषाद असीम
चोट सुनकर ज्ञान सुत का देख व्रण-उपचार
व्यथित विह्वल औ दुखी मन में विषाद अपार -२८-

बनी करुणा मूर्ति करुणा की हृदय ले भार
म्लान मुख बिखरे सु-कच औ नयन आँसू ढार
कर्म की भगिनी वियोगिन बनी लक्ष्मी दीन
घाव सुन आ त्वरित गति आहें भरे मतिहीन -२९-

देख कर गुरु पास में दौड़े सुवन प्रिय ज्ञान
कर्म भी दौड़े लखें क्यों आ रहे अनजान
मिलन प्रिय जन का प्रियों से देख अम्बर दीन
है छिपाता मुख दिवाकर बन दुखी औ पीन -३०-

हाल सुन संवाद सुन औ जान निर्णय शुद्ध
सब मुदित मन मिल रहे जिमि ज्ञान मे उद्‌बुद्ध
मात्र दो जन रो रहे अब भी समझ परिणाम
'सोम' 'जन' परिताप से जलते दहे भव-वाम -३१-

सभी जन ने चरण छू गुरु का किया सम्मान
शिष्य जिसके 'ज्ञान' मे औ 'कर्म' से द्युतिमान
नव्य मानवता बनाते नव्य करते काज
प्रेम से करुणा सुपथ नव पंथ रचते आज -३२-

कहा गुरु ने "जान निर्णय दे रहा वरदान
ज्ञान सुत हो अमर जग में कर्म करे महान
नव्य मानव को सिखाए प्रेम का सन्देश
धन्य होवे देश इससे धन्य होवे देश -३३-

देखना इसको अवशि पर अवध का परिणाम
दुखित जन का दुख मिटाना प्रथम होगा काम
पुनः कल हो आगमन, अभिषेक या अपमान
तय करेगा स्वयं ही पर चले अब है शाम" -३४-

गुरु का निदेश सुनते ही
सबमें उत्साह जगा था
अब 'ज्ञान' नृपति बन जाएँ
सब में अभिलाष जगा था -३५-

विमर्श

"मनुज प्रकृति का नहीं दास है प्रकृति मनुज की दासी
प्रकृति प्रिया सुख-थाल सजा कर वरण करे वन-वासी
घहरा कर घन में घमंड से जहाँ घनाली घूमे
विद्युत यंत्रों के अधीन हो वहीं मनुज पद-चूमें -१

प्रलयंकारी झंझावर्तन से न मनुज है डरता
ज्वालामुखियों का ताण्डव धीरज से वह है सहता
नहीं अंशु आघात अंशुमाली सूरज कर पाता
बाततापियों काष्ठगृहों से मानव सब सह जाता -२

लाँघ गुरुत्त्वाकर्पण भू का अन्तरिक्ष में घूम रहा
घूम चुका सशरीर चन्द्र पर देखा अद्‌भुत हर्प महा
महासागरों की गहराई उसने नापा आ जा
दुर्गम दुर्लघॅ गिरि शिखरों को नापा उसने जा जा -३

ध्वनि विद्युत औ ज्योति तरंगों को वशवर्ती करके
विविध यंत्र से सुख लेता आनन्द करे जी भर के
ध्वनियों से भी तीव्र वेग से जाता मनुज जगत में
अणु परमाणु और 'लेसर' कम्प्यूटर करतल गत में -४

सुन्दर सुन्दर वृक्ष लता तरु गुल्म न चल सकते हैं
अपने स्थानों पर अजेय दृढ़ निश्चल रह सकते हैं
जीव जन्तुओं में न हाथ है नहीं उन्हें वाणी है
किन्तु मनुज के पास पॉव है हाथ और वाणी है -५

तभी मनुज ने सजा सजा कर अभिनव सृष्टि रचाया
सभी जीव सचराचर जग में इच्छा मात्र नचाया
बना पूर्ण स्वामी सु-सृष्टि का नूतन रूप दिखाया
मनुज सत्य ही ईश अंश है इसको कर दिखलाया -६

उसके अन्दर में अजेय निर्लिप्त देव है बैठा
वह अनादि है वह अनन्त निरुपाधि रूप में बैठा
यद्यपि वह अंगुष्ठ मात्र ही किन्तु सूर्य सा दीखें
दश सहस्रवाँ-बाल अग्र सा पर अनन्त सा दीखे -७

नही देखनी ऑंख जगत को नही कान सुनता है।
'वही' देखता ऑंखों से कानो से खुद सुनता है
सभी इन्द्रियाँ साधन हैं बस उस कूटस्थ प्रवर के
और वही सब में समान सम भाव व्याप्त जड़-चर में ८

प्रभु ने था अवतार लिया अम्बुधि में जैसे पहले
पहले जलचर मत्स्य और फिर कच्छप बन जल-थल मे
चार पैर के भूतल चारी बन बराह आए थे
पशु से फिर संयुक्त मनुज नरसिंह रूप लाए थे -९

फिर सारे अवतार मनुज के हुए यथा थे जग में
क्रम विकास में वामन से प्रभु हुए मनुज अग जग मे
तन प्रधान मानते दनुज औ मनुज मनस को जाने
मन की परम तरलता तज बुधि औ विवेक प्रज्ञाने -१०

सारा सतयुग अर्पण था मानव के मनस प्रगति में
ध्यान धारणा औ समाधि के साधन लगे प्रगति में
आज मनुज मन से न काम कर के रह सके जगत में
आज बुद्धि से ही हो सकता सारे कार्य जगत में -११

अंधकार का युग समाप्त कर ज्ञान ज्योति ले आया
'अन्न' 'प्राण' औ 'मनोकोप' को पीछे तज कर आया
आज 'कोप' विज्ञान लिए मनुजत्त्व अमर होने को
है प्रयास रत निर्निमेप अनवरत प्रखर होने को -१२

है समक्ष उद्देश्य खड़ा 'आनन्द कोष' पाने को
जब तक मिलती नहीं मुक्ति आनन्द मग्न रहने को
इच्छाओं की पूर्ति मात्र से सुखी न नर रहने को
और न सुख से तुष्ट या कि सन्तुष्ट नित्य रहने को १३

मनुज परिस्थिति का न दास है वरन बनाता उसको
व्यक्ति रूप में दिखे सत्य पर नही सत्य सब-जन-को
तज करके आखेट काल ऋषि कृषि को था अपनाया
फिर पशुओं को चला चरा कर, सुन्दर ग्राम रचाया -१४

चलते फिरते गमन करे वे ग्राम गोत्र ले कर के
फिर सुस्थिर हो नगर बना पुर-दुर्ग बसा सुख धर के
नर समाज को सुदृढ़ रूप दे राज्य, धर्म तब आए
दण्ड शक्ति औ सैन्यशक्ति विज्ञान शक्ति ले धाए -१५

मनुज परिस्थितियाँ सँवार कर दास बनाता उसको
कठिन चुनौती देख धैर्य उत्साह बढ चले उसमे
अन्तरिक्ष तक नाँच रहा विज्ञान शक्ति के बूते
झुकती सारी सृष्टि परिस्थिति मात्र मनुज के छूते -१६

इस अनन्त ब्रह्माण्ड सृष्टि मे सूर्य अनेको फैले
सर्वकाल सर्वत्र सभी दिशि प्रभा पुंज से गेले
अन्धकार फिर भला कहाँ से कैसे हो सकता है
तम प्रकाश का झगडा क्या निशि दिवस हुआ करता है १७

तम मे नहीं अभाव ज्योति का ज्योति सदा रहती है
उसी ज्योति की छाया मे बस तमस बचा रहता है
अपनी निज की छाया को ही अन्धकार है कहते
तमस मनस का मोह रूप है माया इसको कहते -१८

ज्ञात और अज्ञात सृष्टि ब्रह्माण्ड-चक्र मे फैले
निज धुरियो पर चले सभी स्वाधीन रूप मे फैले
किन्तु सभी आपस-आपस मे कृष्ट-विकृष्ट हुए से
सभी व्यवस्थित पूर्ण रूप से मानो बुने हुए से -१९

दीख रहा संसार-चक्र सा बड़ी [illegible] घूम
सभी परावृत् विविध रूप मे राग द्वेष का चूम
बीस सहायक आगे के संग प्रमुख शताधिक और
धुर-प्रदेश मायान्धकार अज्ञान रूप से सारे २०

अकृति और अज्ञान, अनास्था के पातक प्रिय पाले
त्रिगुण त्रितापों से निरुद्ध ले पातक अलग निराले
कामिनी और काचन-प्रलुब्ध, सत्ता सम्मान मनचाहे
'मनुज दोषमय' यह कुमान्यता भी प्रचलन कर डाले -२१

जहॉ साम गायन करते हम तीन ध्येय से पढ़ते
स्वधा पितर पॉए, प्रभूत पा तृण तुप पशु भी बढ़ते
और मनुष्यों में आशा की दीप प्रज्वलित होए
वहीं आज नैराश्य अनास्था से सब जग क्रम खोए

बन्धु कर्म! इस हेतु हमें नूतन योगासन करना
निज अतीत के योग-साधनों को अभिनव है रचना"
कहते हैं ज्ञानेश्वर पाकर कर्म-देव को वन में
एकान्त शान्त नीरव प्रदेश गुरुकुल के शुभ उपवन में -२३

"षट चक्रों का ज्ञान तुम्हे अभ्यास पूर्ण है जानूँ
ब्रह्म रंध्र में पहुँच मित्र आनन्द पिबत हो मानूँ
मूलाधारस्वाधिष्ठानँ मणिपूर अनाहत जैसे
औ विशुद्ध आज्ञा सुचक्र को वेध बढ़े हम जैसे २४

उसी तरह अब नए चक्र-षट हमें बेधना होगा
आशा ध्यान पराक्रम श्रम औ पंचम समता होगा
तदनन्तर सहकार चक्र पर चढ़ कर बढ़ना होगा
नव्य भुजंगिनि जागृत कर अमरत्त्व भोगना होगा -२५

आश चक्र है चार-दलों का मूल सदृश ही जानो
श्रद्धा औ विश्वास भक्ति आस्था को सम्बल जानो
ध्यान चक्र है द्विदल युक्त एकाग्र और अवधानो
वेद, उपनिषद गाते महिमा ध्यान चक्र शुभ जानो -२

और पराक्रम तीन दलो का धैर्य तथा उत्साही
औ समत्त्व का भाव पराजय-जय सब में निर्वाहि
श्रम समता सहकार चक्र से वर्ग मिटे संताप घटे
शासन सत्ता से विमुक्ति हो, मनुज त्रास संत्रास मिटे -२७

है समाज ही ब्रह्म, मान, यह सेवा करना श्रम है
अलगर्जी सा हाथ हिलाना नैतिकता से छल है
निष्ठा से पवित्र भावों से जो श्रम हैं हम करते
षट चक्रों की परिधि प्राप्त "अभ्यास" उसी को कहते -

सच्चे ईश्वर भक्त श्रमिक हैं जो उत्पादन करते
लख समाज हरि रूप भक्ति श्रद्धामय श्रम वे करते
नहीं मालिकी का आकर्षण नहीं कामना-यश है
पर दोषों से दुखी चित्त मे जिन्हें त्याग मे रस है -२९

काम क्रोध मद मोह लोभ मत्सर न जिसे छू पाता
पर पीड़ा से दुखित द्रवित अन्तर जिसका अकुलाता
सृष्टि ईश का वास जान निष्काम कर्म करते हैं
औ कर्मो मे हो अलिप्त शत वर्ष जिया करते हैं -३०

समता सुन्दर न्याय पूर्ण मुट्ठी बँधने के जैसा
निजी अभिक्रम का अवसर सुन्दर मणिमाला जैसा
सहकार चक्र में मित्र! समन्वय और समुच्चय जानो
तभी पूर्ण आनन्द प्राप्ति का श्रेष्ठ पंथ अनुमानो -३१

संसार-चक्र निज नेमि ले चले निज प्रयत्न से निज निदेश से
मिटे पंचविधि क्लेश अस्मिता अभिनिवेश औ राग द्वेष से
क्योंकि हमारा अहंकार बन जाता चक्रों का स्वामी
नाच नचाता भाँति-भाँति मे बना जगत को अनुगामी -३

कभी भूमिपति कभी द्रव्य-पति और कभी राजा बनता
मालिक या कि प्रबन्धक या नेता बन कर शोषण करता
इसीलिए फिर से न करें हम किसी वर्ग का नव सर्जन
हमें वर्ग का, शोषण का, सत्ता का, है करना निरसन ३३

सत्ता का मद है अनन्त पी हुआ कौन बेहाल नहीं
अज्ञान अनास्था से प्रचण्ड हो करे जगत पामाल सही
हमें राज्य सत्ता न चाहिए वह सुराज्य ही क्यो न रहे
स्वयं हटा कर केन्द्र भूमि से तब सुझाव हम मित्र कहें -३

योग मार्ग में जैसे हर क्षण सावधान हम रहते
आसन मुद्रा ध्यान साध सब सिद्धि प्राप्त हम करते
किन्तु अगर हम जरा चूकते वायु -सुषुम्ना विचले
काम देव प्रज्वाल रूप ले हमें शीघ्र ही कुचलें ३५

फिर आगे है रोग मनस-पट आप जानते इनको
काम क्रोध मद लोभ मोह मत्सर से चलते बच के
इसी तरह यदि किसी हेतु से हुए स्खलित नव पथ
सर्वनाश की ओर घिसटते जाएँ सदा अ-वश से -३

लिए अनास्था औ प्रपंच फिर सत्ता दण्ड सहारे
शोषण और विषमता से सारे जग को संहारे
ये हैं नूतन रोग मनस-पट इनसे बचना होगा
पहुँचाते ये सर्वनाश को इनको तजना होगा - ३७

इसीलिए जैसे अब तक षट-कर्म किया हम करते
वस्ति नौलि धौती नेती त्राटक हम करते रहते
औ कपाल की भाति नित्य-क्रम सा हम हैं अपनाते
योग पंथ में नहीं विपथता हम हैं आने देते -३८

उसी तरह षट-कर्म नए हमको अपनाना होगा
शिक्षा स्वास्थ्य सफाई का अवलम्बन करना होगा
संचार सुरक्षा संस्कृति का नूतन पट-बाना होगा
प्राणायाम सदृश हे मित्र! हमें अर्थायाम चलाना होगा -३९

यम नियमों को भूल न जाना सदा सनातन जानो
यम सामाजिक धर्म, नियम वैयक्तिक क्रम हैं जानो
सत्य अहिंसा ब्रह्मचर्य अस्तेय असंग्रह यम से
शौच तोष तप स्वाध्याय प्रणिधान ईश नियमन से -४०

सात विलोमों के विरुद्ध हैं इन्हें नैषिधिक जानो
शेष तीन तप स्वाध्याय औ ईश्वर को प्रणिधानो
सत्य अहिंसा ब्रह्मचर्य अस्तेय असग्रंह शुचिता
और तोष है नीति धर्म पर अपर वास्तविक शुचिता -४१

नहीं सिखा सकते समाज को हम असत्य औ हिंसा
छीना झपटी चोरी औ व्यभिचार गन्दगी रखना
इसीलिए व्यक्तिगत रूप में इन्हें रोकते रहते
नहीं अहिंसा ब्रह्मचर्य से विश्व चला हम सकते ४२

जब तक राष्ट्रों की सीमा है देश राज्य है बाकी
नहीं अहिंसा की मर्यादा का पालन हो काफी
जब तक मानव वंश-वृद्धि अनिरुद्ध रखाना हमको
ब्रह्म चर्य सम्पूर्ण रूप से सिखा न सकते सबको -४३

योग यज्ञ पूजा सुदान कृतयुग पद चार निराले
योग विहीन रहे त्रेता में तीन पाद धृति वाले
द्वापर में द्विविधा अनन्त पूजा औ दान बचे थे
पर कलि मे लेकर मशीन कल दान मात्र बिखरे हैं -४४

मानव का उत्थान-प्रगति यह भक्ति नहीं देने को
हिय अम्बुधि में नहीं कर्म उद्दाम ज्वार भरने को
जब गरीब हों दीन हीन हों भक्ति सहारे बैठे
टूट न जाएँ विलख विपद में रहे किनारे बैठे -४५

योग मार्ग व्यक्तिगत सदा है मानव का मन जागे
छिपे हुए अन्तर्निगूढ़ में शक्ति पुंज उठ जागे
फिर उनका अपनी मर्जी से हम उपयोग करेंगें
है 'सु-योग' 'उप-योग' अन्यथा ले वियोग विलखेगें -४६

जब हो जाता चित निरुद्ध कुछ कर्म न तन से होता
सभी इन्द्रियाँ निश्चल हो चित सब सुधिबुधि है खोता
वृत्ति पंच हो कर निः शेष सब कर्म अकर्म हुए से
शांभवी मूर्ति उन्मनी दशा से मदिरा मनों पिए से -४७

शत सहस्र संवत्सर हित नियमन समाज का करना
न्याय पूर्ण सम्यक-विधान से सुदृढ़ इसे है करना
ताकि न सत्तर-सालों मे भर-भरा स्वयं ही टूटे
नर समाज की कथित प्रगति का भांडा स्वयं न फूटे -४८

नही छोड़ सकते समाज को शोषण-कृत्य सहारे
संगठन-व्यवस्था-हीन वर्ग में बँटे रहे मन मारे
शक्तिवान शोषण न करे भावी निःशक्त मनुज का
राज्य तंत्र धन तंत्र धर्म विज्ञान ज्ञान औ सब का -४९

इसी हेतु सब काम बाँट क्षमता लख कर जन-जन की
आवश्यक आवश्यकता की सम्पूर्ति सभी विधि करके
नर समाज अपना कुटुम्ब है भाव मान्यता ले कर
कर्म करें फल की न आश रख, सिर्फ जरूरत ले कर -५०

काम अधिक पर दाम अल्प यह धनिक-तंत्र है
दाम अधिक पर काम अल्प यह श्रमिक ढंग है
जितना होवे काम दाम भी उतना मिलना
सुन्दर मान्य व्यवस्था यह हिलमिलकर रहना -५१

किन्तु बड़ा व्यवधान बीच में इसके आता
बन्द और हड़ताल नित्य ही सहना पड़ता
देने वाले को लगता है काम अल्प है
पाने वाले को लगता है दाम अल्प है -५२

और दूसरा दोष बन्धु इसमें जो रहता
नहीं मानवी गरिमा का अवसर कुछ रहता
बन जाता बाजार विश्व है दाम बिक रहा
काम बिके ईमान बिके हरिचन्द्र बिक रहा -५३

इससे भी सुन्दर विधान मानवी प्रगति का
संस्कृति का विकसित मानव के पुण्य पंथ का
बहा स्नेह की सुधाधार समता ला देना
क्षमता भर कर कर्म, जरूरत भर ही लेना -५४

किन्तु नहीं यह शक्य स्वार्थ से दंभ-भाव से
हिंसा से औ दण्ड शक्ति सत्ता प्रमाद से
यह संभव बैराग्य भाव अद्वैत भाव से
'नर समाज प्रभु रूप सत्य' इस भक्ति भाव से -५५

इतने बड़े काम का प्रिय संगठन कठिन है
क्योंकि संगठन से बनता संगठक मलिन है
इसकी सारी मान्य व्यवस्था बने विकेन्द्रित
छोटे से एकांश रूप में चले अकेन्द्रित -५६

निज कुटुम्ब में मनुज रहें संयुक्त रूप में
नहीं विखंडित विघटित हो व्यक्तिगत स्वार्थ में
वही प्रथम एकांश सुरक्षा सब को देती
स्वाधारित परिवार करे गोपालन खेती -५७

दर्जी नाई बढ़ई औ कारीगर सारे
निश्चित मात्रा में 'जेउरा' परिवारों से लें
बचे समय में सभी लोग नित सूत कात लें
ग्रामाधारित वस्त्र सूत से वस्त्र बुना लें -५८

सुखद गाँव परिवार सदृश 'समुदाय' रूप में
करें सुरक्षा गारंटी हर कर्म रूप में
पूर्व पुरुष का अनुभव औ प्रतिद्वन्द्वि बिरहिता
शिक्षा स्वास्थ्य सफाई औ जीवन की रक्षा -५९

मुद्रा का प्रचलन अल्प रहे श्रम का प्राधान्य रहे जग में
मिट जाए ब्याज किराया औ लाभांश चक्र इस अग जग में
वेतन का प्रचलन अल्प रहे सौहार्द सुधा जग में व्यापे
करते श्रम सब क्षमतानुकूल औ सभी जरूरत भर पाते -६०

बैराग्य और अद्वैत भाव का यही प्रयोगी पथ है
हिंसा असत्य अन्याय छोड़ शुभ लोकनीति का पथ है
यही स्वर्ग सा पुण्यपंथ है यही मनुज की आशा
नव संस्कृति के पुण्य भाव की सदा सनातन आशा -६१

मनुज जन्म से नहीं श्रेष्ठ है श्रेष्ठ कर्म से होता
जाति नहीं यह ज्ञाति मात्र है जन्म नहीं कुछ होता
सबका कर कर संस्कार द्विज श्रेष्ठ बनाना हमको
रहे न कोई क्षुद्र शूद्र बस रुद्र बनाना सब को -६२

नर कुटुम्ब फिर यह समाज है और देश है बाकी
यही चार बस मुख्य तत्त्व है यही सोचना काफी
इसके ऊपर विश्वराज्य या राम राज्य ही जानो
भेद हीन सब वर्ग हीन शोषण विहीन अनुमानो -६३

चले चक्र संसार सदा अनवरत अबाध प्रगति मे
ऊबड़ खाबड़ कभी सुथल थल कभी मन्द द्रुत गति से
ले प्रवाह संसार नदी सा गड्ढा पहले पाटे
दीन हीन निर्बल निलम्ब को दया प्रथम ही बॉटे -६४

सत्ता अपने आप चले या अल्प निदेशित होवे
कुछ दूरी पर बैठ एक जन उसको लखता होवे
सत्ता सम्पति ले कर राजा राज्य चलाता जावे
दूर-दूर से किन्तु दूसरा सत्य-निरीक्षक होवे -६५

कुन्दन तप कर कठिन अनल में जैसे मित्र! निखरता
बटु को दे कठोर शिक्षा तप साधन और तितिक्षा
निजी स्वार्थ उसके समाप्त कर पूत बनाना होगा
राजा को भी ठीक रखे इस योग्य बनाना होगा -६६

ताकि न जग के सुख वैभव सब स्वयं न निज हित ले लें
सत्ता धर्म और सम्पति का सब उपभोग न कर ले
शेष सभी को वंचित कर के दुख-समुद्र में डाले
इसकी लालच बहुत बड़ी है मनुजों को उलझा ले -६७

संगठन शक्ति सज्जन सुसन्त की नहीं जगत में होती
हैं संत सतोगुण के प्रतिनिधि जो विलग विकेन्द्रित रहता
सारे कर्मो का मूल रजस जो काम क्रोध का उन्नायक
बस वही सगंठित हो सकता औ वही राज्य करने लायक -६८

इसलिए ब्राह्मणों सन्तों का संगठन नही होने वाला
निज में प्रमत्त प्रभु 'सुखासक्त' जग से उदास तप मतवाला
उनको उडुपति सम दीप्तिमान गगनांगन में रहने देना
और बौद्धिकों की भावी सतंति को यह बतला देना -६९

त्रिगुणों का उपयोग भलीविधि कर जग में जागृति लाएँ
प्रातः में बढ़ता सत्त्व भाव अध्ययन ध्यान पूजा लाएँ
रज बढ़ता पाकर सूर्य ताप हम करें जगत के कर्म सभी
रजनी का पा तम तमस बढ़े लें स्वप्न रहित निद्रा गहरी -७०

महासमर के मध्य कृष्ण ने अर्जुन को समझाया
निज स्वभाव अनुकूल कर्म है धर्म इसे बतलाया
तभी नेमि संसार चक्र की बिना चलाए चलती
बन अनादि औ बन अनन्त यह सदा सनातन चलती -७१

परम प्रभू भगवान कृष्ण ने सुन्दर राह दिखाया
कर्म और गुण पर आधारित निज स्वधर्म बतलाया
नहीं जन्म से वर्ण बनेगा वृथा जाति की संज्ञा
कर्म और गुण पर आधारित 'ज्ञाति' ज्ञान की संज्ञा -७२

और परस्पर परिवर्तन हो सकता योग्य गुणों मे
नीचे भी आना होगा उसको अपने दुर्गुण मे
सर्व श्रेष्ठ औ सर्व-योग्य-तम व्यक्ति बनेगा पूजित
नर समाज बढ़ता सुरत्त्व की ओर सदा हो विकसित -७३

निज पद छल से किसी कर्ण को तजना नहीं पड़ेगा
एकलव्य भी राज्य-धर्म की सीढ़ी से न गिरेगा
नहीं किसी शम्बूक भक्त को फिर से सहना होगा
अपने अपने गुण के कारण श्रेष्ठ पूज्य -जन होगा -७४

नहीं किसी को कष्ट रहे औ नहीं विषमता उपजे
और न हो अन्याय कहीं समता करुणा सुख पनपे
किन्तु अगर कुछ कष्ट कहीं कर्त्तव्य मार्ग में बाकी
उसे तपस्या कहो जगत का प्रगति पंथ निष्पापी -७५

वेदना और आँसू से ही-सुख उपजा करता है
आता शिशु जब जगती में-वेदना प्रसव सहना है
निशि निविड़ तमिस्रा हर कर-सुख-सूर्य उदित होता है
गरजते घने बादल मे-द्युति तड़ित चटक होता है -७६

सह बृक्ष-बीज दुख कितना-भावी अंकुर उर पाले
भावी वट की माँ बनकर-सुख गर्व जगत में पा ले
गोधूम प्रकृति का दुख सह-तन चूर्ण किया करता है
बस इसी पुण्य के कारण - जग उदर भरा करता है -७७

गरजते भयद सागर को - क्या नहीं कभी है देखा
ले रत्न राशि अन्तर में - खारापन का क्या लेखा
फन सा फैला व्याकुल हो - पाषाण शिला पर पटके
हारते हारते निशि दिन - आहत सा पड़ा ॲटक के -

पाषाण बालुका बनता - मिट जाती शैल शिखाएँ
फिर मुहर्मुहः लहरों से - जग को कर्त्तव्य सिखाएँ
जो लगा हुआ है पथ पर - निर्बल भी मंजिल पाए
जो नहीं चलेगा पथ पर - हो सबल पड़ा रह जाए ७९

सह चक्रवात भयकारी - तरु शीर्ष उठा करता है
ज्वालामुखियों का ताण्डव - सह गिरि भूधर बनता है
रवि की प्रचण्ड किरणें सह - सह शिशिर शीत की रातें
बन जाती दूब अमर है - सह कर सब प्रत्याघातें -८०

करता जो खोज सुखों का - सुख के पथ से सुख मे ही
पा नहीं सकेगा सुख वह - औ अन्त मिलेगा दुख ही
दुख के गह्वर में दुख से - जो खोज सकेगा सुख को
आनन्द मनाएगा वह - औ छोड़ सकेगा दुख को -८१

बनवासी मानव कैसे - चल स्वयं ग्राम को आया
गिरिगुहा छोड़ कर के वह - शुभ नगर महल दिखलाया
ये भवन महल प्रासादिक - आकाश चूमने वाले
ये यंत्र तंत्र निर्मित जग- शशि धरा रौंदने-वाले -८२

श्रम स्वेद व्यथा सह कर ही - मानव निर्मित कर पाया
यदि मानव ने आगे भी - सुख का पथ लेना चाहा
उसको लगना ही होगा - श्रम सिक्त व्यथा के पथ पर
सहकार समर्पण समता - पौरुष के महा सुपथ पर" -८३

कर्म देव औ ज्ञानदेव का पूरा हुआ विमर्श
नव समाज रचना की खातिर देते प्राण सहर्ष - ८४

मिलन

"जब होती है धरा दग्ध 'दीरघ निदाघ' से झुलसे
प्रखर ताप से तप्त चराचर जीवन को नित तरसे
अनिल अनल सी धू-धू चलती मित्र अमित्र हुए से
प्रथम पात बरसात बिन्दु की मृदुता सुधा पिए से -१

चलती खटखट और खटाखट रात दिवस क्या जाने
मिल मशीन अनवरत चल रही क्षुधा तृषा क्या जाने
किन्तु न चल सकती सनेह से हीन चिरन्तन क्षण तक
उसे चाहिए स्नेह और फिर स्नेह अनन्त समय तक -२

चलती चूँ चूँ चरर-मरर पथ पर वृषयान दिखेगी
खींच रहा हो बृषभ महिप या फिर नर हाथ खिंचेगी
अगर धुरी सूखी सी रहती कठिनाई से जाती
पर सनेह की मृदुल धार पा सहज सरल पथ जाती -३

भट्ठी के अति रक्त अनल में लौह लाल है होता
हो जाता है तरल अम्बु सा विमल खरा फिर बनता
अगर वही क्रम-क्रम शीतल हो मृदुल मात्र बनता है
पर सनेह पा अम्बु एकाएक कठिन लौह बनता है -४

अंडे का आवरण सख्त भी तोड़ निकलता चूजा
मातृ-स्नेह से सिक्त स्पर्श पा और ताप पा उसका
गर्भक के अर्भक समान जननी सनेह को पाकर
कर सु-धन्य चिर-स्नेह और फिर स्नेह अनन्त धरा पर -५

ले अथाह ऊर्जा विद्युत की चलती वर्तुल पथ में
छोड़ गगन को, लौह-पंथ चढ़ जाती है घर-घर में
'परिवर्तक' में सूक्ष्म स्नेह का शुभ आलिंगन पा कर
दोष रहित चलती जाती वर्तुल के अन्तिम इति तक -६

सभी तरंगे चलती वर्त्तुल में युग-सूत्र सहारे
धन ऋण से गुण-निधि-सहस्र क्रोसादि निमिप में जा रे
विद्युत की ऋण नारी है धन पुरुप अंश कहलाता
बिना उभय के वर्त्तुल क्या पूरा होने को आता -७

पुरुष शून्य है परुष-परुष सा नारी मृदु ममता मय
देती जग को जन्म गर्भ रख पिला अमृत सा निज पय
बिना नारि के जगती का उद्देश्य न पूरा होगा
अर्थ धर्म औ मिले मोक्ष पर काम न पूरा होगा -८

उसकी ममता मृदुल प्रेम का भाजन बन जाने को
रहता है नर का मतंग मातंग सुधा पाने को
प्रथम मिलन में रोम हर्ष धुक-धुकी हृदय की होती
वह दैवी वरदान सात्विकी प्रेम - जगत की मोती -९

पुरुप प्रकृति से सहज परुष है भाती उसे विधुरता
जीवन का सूना पन ले कर रहता सदा भटकता
नारी अपने साथ उसे जीवन में जोड़ रखेगी
एक चक्र बन स्वयं अपर में पुरुप नॉध रक्खेगी -१०

नारी का मन सहज भाव से सुस्थिर औ स्थिर रहता
उसे चाह होती अपना घर जीवन में कब बनता
सँजो सँजो गार्हस्थ्य सुखों को पुत्र प्रसव कब कर ले
ले कर पति औ पूत, पूत बन जीवन धन्य बना ले -११

जिसे देख कहते सुविज्ञ 'जन नारी तो प्रमदा है
मोह रूप प्रतिविम्ब दासता माया रूप सदा है
सभी तपस्या खंडित कर भटकाती अमर नरों को
उड़ती है तितली समान जगती में बिना परो के' -१२

पुरुष भोगता नहीं नारि को, नारि भोगती नर को
नाच रहा नर है वानर सा, नारि नचाती नर को
स्वयं बैठ कर भव्य भवन में भोग रही वैभव को
दो रोटी ले पुरुष चला घर छोड़ सुबह ही श्रम को १३

फिर तो है स्वाधीन 'त्रिया' चाहे 'चरित्र' जो कर ले
सभी कोष वसु निधि उसके कर चाहे जो भी कर ले
कहते हैं है पुरुप प्रमुख नारी उसकी है दासी
पर नारी स्वामिनी पुरुष की सभी जगत वसुधा की -१४

क्योंकि पुरुष ही है झुकता नित नारी के चरणो मे
नारी हँसती अन्तर्मन में लख नर निज चरणों में
कहती है वह अरे! पुरुष चाहे जितना भी ज्ञानी
इन चरणों में अवशि झुकेगा बना निपट अज्ञानी -१५

मॉ का पावन पूत प्रेम अवलम्ब सदा है बनता
रोते हुए सुवन-शिशु का अवलम्ब मातृ-पय बनता
महत्तरा कह कह कर उसका अभिवादन हम करते
और बहन या स्वसा रूप मे उसका गायन करते -१६

हम भी तो हैं मनुज सुभगि! मृदुता मुझको भी भाती
औ कठोर कर्त्तव्य पंथ की नहीं परुषता भाती
रात दिवस कर के कठोर श्रम जब अन्तम् में थक लें
यही चाह होती मृदु नारी कोई बॉह पकड़ ले -१७

अपने अंचल में सनेह से हमे कभी बिठला के
निज अगाध शुभ स्नेह सिन्धु का शुभ नवनीत पिला के
तन मन चित मे खिन्न व्यथित मुझको कुछ काल बिठा के
दे फिर नूतन जन्म नया उत्साह स्नेह दिखला के -१८

जब हम रोएँ कभी दुःख में प्रथम अश्रु वह ढाती
नर के सभी अगाध दुखों को, अश्रु सिन्धु से खोती
इसके अंचल में न अश्रु पय धारा नहीं दिखेगी
वह तो है अमृत महान ले जग को अमर करेगी १९

किन्तु कठिन कर्त्तव्य पंथ चल व्याह न कर सकते हैं
जग के वैभव सुख सम्पति निज पर न लुटा सकते हैं
हमें दूर रहना लक्ष्मी से भिक्षुक ही रहने दो
मेरे पाप ताप शापादिक मुझको ही सहने दो -२०

कहॉ पात्रता मैंने पाई दुखी अम्ब को कर लूँ
और उसी नारी को दासी औ बन्दिनी बना लूँ
मुझे चाहिए मित्र, सखा, माता नारी के तन में
नहीं चाहिए पत्नी मुझको इस विवाह बन्धन में -२१

अपने लिए यही पथ मैंने 'सुन्दरि' आज चुना है
ले अखण्ड व्रत ब्रह्मचर्य का जीवन सूत्र बुना है
तरुणाई में नही कभी वृद्धा का तन पाने को
और बुढ़ापे मे तरुणी का साथ न हम लेने को -२२

अवध जगत का कार्य करें निज को न्योछावर कर के
निजी स्वार्थ कर चूर्ण सभी विधि जगत-स्वार्थ हिय धर के
मुझे अवध उद्धार-कार्य का चिर परितोष रहेगा
नहीं व्याह कर पाने का कुछ भी अनुताप रहेगा" -२३

मन में विचित्र सा उहापोह-संकोच हृदय मे ले अपार
कुछ सकुचाती हिय मुस्काती-कुछ मनस सोच बन कर उदार
लक्ष्मी सुनती सी रही बात-करुणा के सँग प्रियतम सुपास
ले सुभग रूप सौन्दर्य खानि-कच कुच नितम्ब गल पुष्प माल·

लक्ष्मी बोली "हे आर्य सुवन!'- हे धर्म न्याय के संस्थापक
नव विश्व व्यवस्था के नायक! - सामान्य जनों के प्रतिपालक
नर मनस तमस के हे नाशक - धृति सत्य अहिंसा उद्घाटक
उद्दाम लोभ मत्सर अमर्ष के - हे नाशक! जग के पालक -२५

है सूर्य सदृश तव ज्योति तेज - मिटते अधर्म अन्याय रोग
जो तुम्हें रंच भी प्राप्त करे - मिट जाए भव वाधा कुरोग
तुमको सहस्त्र शत नमन आज - ले चली हृदय में अमित साध
कल होगा तब अभिषेक साज-इसलिए मिलन को चली आज

जो उपालंभ की रही बात - वह शेष काल को गई छूट
सखि की पावन महिमा अनन्त - मत इसका जाए साथ छूट
यह मुखर बड़ी यह कोमल है - यह हृदयवती यह ममता है
इसका चरित्र अद्भुत अनूप - लावण्यवती यह समता है" -२७

बोले 'प्रिय लक्ष्मी रानी हे! तुम सुखद बड़ी हो सुखकारी
क्षमा करे जो व्यंग्य किया हे नृपति सुता ! हे जयकारी !
तुम विभव खानि ऐश्वर्य रूप - तुम सुख स्वरूप निर्मल अनूप
तुम हेममयी, तुम रजत राशि - सौन्दर्य रूप सर्जक-स्वरूप

नर नारी का सम्बन्ध सुखद पावन कल्याण मयी होवे
सब तरह मिले उन्मुक्त खिले बस काम भावना को खोवे
जैसे नर का नर मित्र बनें हो युवति युवतियों की प्यारी
सम्बन्ध रहित सब लोग मिले क्या पुरुष रहे क्या हों नारी - २९

नारी को तजना अवशि पड़े - मातृत्त्व भाव मातृत्व बोझ
रति के श्री पति को दे उखाड़ - निष्काम भाव तज काम बोध
है अगर मान्य यह विधि विधान - कोई भी मेरे साथ चले
कर्त्तव्य भूमि करती पुकार - सुन्दरि तेरा भी हृदय मिले - ३०

तुम करुणा की प्रिय सखि महान- सोदरा कर्म की स्वर्ण भाल
आकर्षक तन निष्कलुष रूप-तुमको पा होता जग निहाल
मैं सोंच रहा हूँ करुणा को - कब कर्म देव को सौप सकूँ
अभिषेक पूर्व उनका विवाह- नयनाभिराम हो देख सकूँ - ३१

बेबस बेकस ललना क्या-जाती न अपरिचित घर है
अरमान असीमित ले कर- सहती वह व्यथा अमित है
पर पुरुष-हृदय क्या जाने -ललना को दुख कितना है
हिय व्यथा-सिन्धु में प्लावित पर दिखे अश्रु जितना है - ३२

किसने गहराई नापी - ललना के दुःख उदधि को
माँ बाप बन्धु परिजन तज- कितना दुख होता उसको
पर सहे आत्मजा दुख सब -मानव समाज धरने को
निज स्वेद रक्त ऑसू दे - नर को सुख मय रखने को - ३३

पर पुरुष जान क्या पाया - उसकी महिमा की सीमा
अपने विकृत नयनों मे - देखा भव रजनी भीमा
उन्नत उरोज को देखा - देखा उसकी मांसलता
मादक नितम्ब को देखा- वंकिम भ्रू की चंचलता - ३४

कामिनी मोहिनी मदमय - रतिप्रिया कुसुमधारी को
गज गामिनि चन्द्र मुखी को - देखा पेखा नारी को
पर अरे कभी क्या देखा - माँ भगिनि स्वसा कैसी है
आत्मजा विरह सह पाए - किसमें क्षमता ऐसी है - ३५

आशंकाओं के सागर - विस्मय की लहरो पर चढ़
सन्देह भविष्यत् का ले - अनजान समस्या से कढ़
क्या कहे सुने क्या मन को - अपने को क्या समझाए
कल्पना असीमित सुख की - सन्देह अमित दुख पाए ३६

करती सु - प्रश्न ललना है - भाई से पिता पितामह
सबसे वह पूँछ रही है - हे! तात भविष्यत् कह कह
क्यों मौन साध हो लेते - मेरी करुणा को लख-के
उत्तप्त बने बैठे हो - मम विरह वेदना चख के -३७

मैं तेरी सुन्दर बेटी- बिटिया रानी कहलाई
मैं सीता और सुभद्रा - का रूप लिए हूँ आई
मैं सदा बढ़ाती शोभा - मॉ बाप अंक चढ़ कर के
लक्ष्मी सी बनी जगत में - दुख के सागर से कढ.के - ३८

मैं सदा पराई रहती - पर घर मुझको क्या जाना
बस एक तथ्य की खातिर - मम नियति उलहना पाना
सेवा करती शिशुपन से - पानी देती घर भर को
चूल्हा चौका हूँ करती - शिक्षा लेती जीवन की -३९

मैं मार सदा हूँ खाती- गलती चाहे भाई की
मॉ मुझको पीछे करती - मम अश्रु देख कर के भी
सामान बाद में मिलता - हूँ यथा पराई सच ही
शिशु मनोभाव क्या कहता - कैसे नापे जग सच ही-४०

लेकर उदास भावों को - मैं धैर्य धार कर देखूँ
कब खान पान है मिलता- कब वस्त्र मिलें कब खेलूँ
करती सब सुख न्योछावर - अपने प्यारे भाई पर
पर द्वेष न मत्सर आए - मुझको अपने भाई पर ४१

पर पिता पितामह बोलो - क्या गलती हुई बताओ
क्यों स्नेह न पूरा पाती- कुछ तो कारण बतलाओ
पर बता सकेगा जग क्या - ललना पवित्रता सीमा
करुणा की स्नेह सुधा की - पावनता की महिमा की -४२

स्वजनि! तुम दुखी मत होओ - दिलासा तुम मुझे देओ
धरा के कष्ट को देखो!
त्रितापों से धरा चीत्कार कर कहती
महादव द्वेप से जगती अरे दहनी
मनुज का हिय उदधि सूखा चला जाता
उसे बड़वाग्नि हिंसा का मुखा जाता
मनुज के अन्त होने का समय आया
प्रगति पथ मान कर चलता अगनि पाया -४३

चढ़ा है चन्द्र तक मानव - मही रौंदा शशी का तल
नहीं है वायु या घर्षण - किया है पार गुरु कर्पण
वही दौड़ा गगन को है - अरे देखो मगन को है
उदासी बे -बेबसी ले माँ - गलित यह देह मन सूखा
न तन का सुख न मन का है - अरे यह देह जन का है -४४

मनुज करता महा श्रम है - मगर सब यंत्र खा जाता
मनुज का दास बन आया - मगर नर-भुवन को खाया
चबाता ही चला जाता निरन्तर ह्रास कर कर के
महा हिंसा महा ताण्डव महा विध्वंस लेकर के -४५

निमिष में सर्व मानव का प्रगति पथ अन्त हो जाए
मगर घर कुटी महलादिक - रहे सब शेष प्रासादिक
मरे बे बस विकल मानव - स्वयं हित बन रहा दानव
जगत तो शेष रह जाए
मगर ले मालिकी का बोझ - मानव फिर किधर जाए -४६

विपमता स्वाँस में बैठी - दमन शोषण लिए ऐंठी
प्रचुरता की महामाया - कुशलता ने है भटकाया
बना बाजार दुनिया को - मगर सत लूटने उसको
मनुज की बुद्धि का सागर- सिमटता बन रहा गागर -४७

कभी षट- दोष कामादिक दुखी करते सुधी जन को
मगर वे अब नियंत्रित हों, नए षट - दोष बन आए
मिटाना ताप जग का है - धरा का भार कम करना
मनुज रहे सकें चिर कालिक - हमें उद्योग यह करना -४८

प्रिये! तब स्नेह तो मिलता तुम्हारा हिय सही मिलना
तुम्हारा सत्य औ करुणा भरा सहयोग भी मिलता
तुम्हारा सत्य संकल्पित - सुमन भी प्रिय हमें मिलता
इसी सब के सहारे से - धरा हम बदल पाएँगे
जगत यह बदल पाएँगे
मनुज को अब महा मानव बनाएँ, हम बनाएँगे" - ४९

लक्ष्मी सुनती सी रही बात
स्वप्निलसी हो धीरे-धीरे
क्या भूल गई निज हृद - मोती
या लुटी आज सागर तीरे -५०

अभिषेक

हर्ष पारावार.... .... हर्ष पारावार !!
ले रहा देखो हिलोरें आज अपरम्पार
तोड़ कर सारे पुरातन - दासता के बन्ध
स्वार्थ शोषण कलह औ संघर्ष के सम्बन्ध
अव्यवस्था लूट हिंसा, का महा अनुबन्ध
भीड़ की अस्थिर अवस्था दनुजता का गन्ध ।
छोड़ तन्द्रा और आलस अब जगा मानव
नई आशा औ अपेक्षा ले उठा मानव
युगों की काली निराशा तज चला मानव
हो रहा उन्मुक्त औ स्वच्छन्द नव मानव ॥
नींद से मद होश आँखें अब खुली है
चेतना ले कर नई आई कली है ।
सुमन खिलते जा रहे हैं आज बारम्बार -१ ॥

थिरकता है मोर सा मन, धमनियाँ हैं बनी अरुणिम
वदन के सब पोर पुलकित, नयन में है आश स्वर्णिम
उत्फुल्ल कोलाहल चतुर्दिक, सभी जन है हुए विह्वल
हर्ष से अब हुए गद्‌गद् बोलने को हुए आकुल
बन रही है नई रचना छोड़ कर शोषण पुरातन
पुनः आए राज्य जन का छोड़ कर सामन्त का तन
सजी नगरी अवध पुलकित, बन गई है नव-वधू शुभ
गली कूचा मार्ग सुरभित औ कँगूरों पर कलश शुभ
भागते पर जा रहे सब जन सभा की ओर
गिर रहे गिर कर उठें, बढ़ते चले उस ओर
सभी व्याकुल सभी आकुल सभी करते शोर
हो रहा है शोर भीषण हो रहा है शोर
सिन्धु का गंभीर गर्जन मनुज बनता ज्वार
धूल से आदित्य बन चन्दा बढ़ाए ज्वार
हर्ष पारावार हर्ष पारावार -२

आ रहे गुरुदेव के संग 'कर्म' औ सुत "ज्ञान"।
ले तपोमय तेज सात्विक ब्रह्मचर्य महान
वृषभ-कन्धों पर जनेऊ बगल में मृगचर्म
सिंह सा गंभीर गुरु अरु - नेत्र में शुभ कर्म -३

पहुँच मण्डप मंच पर वे झुके सब की ओर
शान्त हो कर बैठने का किया फिर अनुरोध
और पूँछा "तिलक-क्रम में समय कितना शेष
किसे है स्वीकार सारा आज मम निर्देश" -४

सभी जन उत्फुल्ल उत्कण्ठा सहित चीत्कार
कह उठे "स्वीकार है स्वीकार है स्वीकार"
कहा फिर से ज्ञा‍ ने फिर सुने आप महान
"कौन बनता नृपति है ! देखें इसे धर ध्यान -५

आए नहीं हम पुनः करने नृपति का सर्जन
हो विसर्जन राज्य का स्वामित्त्व का निरसन
मुक्त मानव, हो मनुजता का सदा आदर
वर्ग शोषण और शासन मुक्त हो मादर -६

भरत का हम अनुगमन कर करें नव-सर्जन
पादुका सम आज कुश का करे अभिनन्दन
पतित पावन कुश हमारे धर्म की पहचान
करें इससे दान औ संकल्प करें महान -७

पहन इसकी हम पवित्री करें कर्म विशुद्ध
आर्य जन के सतोगुण की यह शिखा परिशुद्ध
आज इसका भद्रजन ! हम करेंगें अभिषेक
नहीं इसका; वरन इससे, करें निज अभिषेक -८

पात्र पर इसका कौन यह जान लेवें मर्म
जो सदा आरूढ़ होवे मात्र परहित धर्म
स्वत्व अपना छोड़ सर्वस, ग्राम हित बलिदान
कर मके जो स्व- ‌़ी, आए, इसे धर ध्यान -९

प्राप्ति पर कुछ भी नहीं, नहि वह्नि कांचन मान
स्वयं पाकी भी नहीं, बस मात्र भिक्षा दान
किन्तु वह भी कठिन 'तप-मय', वार बारक एक
प्राप्त हो अप्राप्त या बस द्वार केवल एक -१०

सत्य निष्ठा धर्म निष्ठा और ले अस्तेय
ब्रह्मचर्य असंग्रही हो, करे वह अभिषेक
स्वय को आगे करूँ करता स्वयं का दान
ग्राम हित सर्वस्व का निज का करूँ मैं दान -११

वर्ग जाए राज्य जाए जगत शोषण हीन
इसी हित बलिदान निज का करूँ बन कर दीन
अग्रसर जो लोग आएँ करें शुभ अभिषेक
देश का उद्धार करने, करें निज अभिषेक -१०

'ब्रह्म-चिन्तन मग्न' नर आए किया अभिषेक
सत्य के संकल्प से वे हो गए सविशेष
सरयुतट पर जुटी जनता कर रही अभिषेक
नृपति बनते कुश महाशय, हुआ "कुश-अभिषेक" -११

"लक्ष्मी ने भी अनुगमन किया जाकर सत्वर अभिषेक किया
ले सुमन-सुमन पावन जल औ कुश ले कर के संकल्प किया
"यह देह प्राण यह मन मेरा अर्पित है "ज्ञान" चरण सारा
भिक्षाटन ही हो दाय-भाग औ बने तपस्या धन मेरा" -१२

आनन्द - प्रसाद

बन गया अवध था नवल तीर्थ जग का नूतन इतिहास बना
मानव समाज को मिली दिशा नव ज्योति मिली नव पंथ बना
प्राचीन भग्न सामन्तवाद मिट गया मिटे सब वर्ग - भेद
शोषण विहीन शासन विहीन करुणा प्रेरित मानव अभेद -१-

जन जन में था सहकार सुखद श्रम करें समर्पण का स्वभाव
मानव क्या हैं ? हैं स्वर्ग जीव - ले सत्य प्रेम करुणा स्वभाव
अब 'हित विरोध' का हुआ अन्त श्रद्धा सहकार समर्पण से
करता न प्रबन्धक दुरुपयोग निज त्याग पूर्ण जीवन क्रम से -२

है स्थापित कुश का मंच वहाँ कहते हैं सब कुश महाराज
श्री रामचन्द्र के 'अपर सुवन' दोनों की जय-जय महाराज
हैं एक धर्म के संस्थापक सत से असत्य का नाश किया
नूतन समाज के परिवर्तक कुश ने अभिनव इतिहास दिया -३-

कुछ बनी वेदिकाएँ शाश्वत उन पर जा जा जन नमन करे
अपने उद्दाम मोह ममता कामादि लोभ का शमन करें
उठते जन हैं सब ब्राह्म काल धरती औ नभ को नमन करें
जगती प्रभु का आवास समझ सबको प्रणाम प्रभु समझ करें -४

यह नर समाज हरि रूप समझ, पर - हेतु त्याग कामादि लोभ
जो मिला उसी से तोष करें मन में न मोह होता न क्षोभ
है नही विवशता या बन्धन सब बँधे स्वयं अनुशासन मे
करते श्रम सब क्षमतानुकूल हैं दमित नहीं जन- शासन से -५-

होता न काम है बन्द कभी, सर्जन का होता अन्त नहीं
लेता न सूर्य है जब विराम, है प्रगति पथ मानन्त नही
कृषकों के खेत हरे रहते, पल्लवित और कुसुमित रहते
उनका मन मधुकर मग्न रहे, भरपूर स्वयं फल पा सकते -६-

अब सार्थवाह शोषण न करें, सहकारी वृत्ति जगीं उनमें
मुद्रा का प्रचलन अल्प हुआ सब लगे श्रमिक बन श्रम करने
सब तस्कर चोर समाप्त हुए संग्रह का जो अधिकार नही
सब स्वत्त्व मिटी मालिकी हटी सुत औ कलत्र का भार नहीं -७-

अन्याय असत का हुआ अन्त, हिंसा तो है [illegible]
जन की नैनिक संगठन शक्ति मे सभी अणुभना [illegible]
कहते जन हैं, यह प्रजा-प्रजा है, कर्म देव औ [illegible]
दोनों का गुण होता प्रवाह सब धवल [illegible]

करुणा रानी करुणा प्रेरित, यह महा ज्ञान की भगिनी है
अग्रज निदेश से व्याह किया औ महा कर्म की नंदिनी है
है कर्म व्यवस्थापक पुर का, करुणा चिर काल संगिनी है
व्यवहार और व्यापार मध्य रहती जिमि राग रागिनी है -९-

इस नव दम्पति के सब सुपुत्र, जो [illegible]
ये तमस छोड़ चढ़ राजस से, सत चित [illegible]
अज्ञान और तम मोह रूप सब का [illegible]
सीधे सतगुण की ओर बढ़े ये [illegible]

वे हुए महामानव समान स्वर्गिक गुण उनमें सृष्ट हुआ
उनमें नैतिक संस्कार जगे, मानव भी परम विशिष्ट हुआ
वेदान्त और विज्ञान साथ, सबका चलता निष्काम साथ
बन संत राजनेता महान, हर मनुज बन गया 'सहज साधु' -११-

इसके संचालक ज्ञानदेव लक्ष्मी बन गई सहेली भी
नूतन समाज की शुभसर्जक वह नहिं 'परांक प्रासिनी' थी
उसका अद्भुत गौरव करते उसको सब मानुभव [illegible]
उठते सत तम रज से ऊपर वर्धन करते [illegible]

आते हैं जन करते प्रणाम अब उन्हीं वेदिका का सादर
जिनको कहते हैं ज्ञान, कर्म, लक्ष्मी, करुणा, का कर आदर
गुरु का आश्रम अब बना तीर्थ जिसके ऐसे सुत शिष्य हुए
उनकी महिमा अब भी गाती जो वन-स्थली रमणीक लिए -१३

गाता यश है नित सूर्य विशद गाता [illegible]
कल कल बहती सरयू गाती पीयूष [illegible]
चन्दा मे जो है रजत किरण वह [illegible]
उसका जो कुछ भी धवल अंश, वह [illegible] ||

अमूल्य सम्मतिः   आशीर्वाद

श्री ब्रह्म लोचन दुबे की समाज में समरसता एवं समन्वय के आधार पर परिवर्तन लाने के लिए लिखी गई विचार-प्रधान कृति है। उन्होंने अपनी विचार प्रक्रिया को आश्रम प्रयाण विवाद-प्रत्युत्तर संघर्ष विषाद निवारण समर्पण विमर्श मिलन अभिषेक और आनंद आदि चौदह विन्दुओं में समाहित करके यह निष्कर्प निकाला है कि यथार्थ और अध्यात्म दोनों के मेल से ही मर्व-कल्याण कारी परिवर्तन संभव हो सकेगा. काव्य पढ़ने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यद्यपि रचनाकार को कामायनी से बहुत अधिक प्रेरणा प्राप्त हुई है फिर भी उसने वर्तमान परिस्थितियों को लेकर ही यह चिन्तन प्रस्तुत किया है। चिन्तन और बौद्धिकता प्रधान हो जाने से भापा एवं काव्य-तत्वों की ओर प्रायः सतर्कता नहीं रह पाती। इसलिए इस काव्य को केवल उस कसौटी पर ही न कसकर पाठकों को यह देखना चाहिए कि कवि कहना क्या चाहता है।

मेरी समझ में कुशाभिपेकम् के कवि ने जो विचार धारा प्रस्तुत की है वह महत्वपूर्ण है और उसे यदि अपनाया जाए तो ममाज में आनंद राज्य की स्थापना होने में बहुत सहायता मिलेगी।

डा० मोहन अवस्थी
(प्रयाग विश्वविद्यालय)

दिनांक 4/12/97

प्रियवर,

आपके 'कुशाभिषेकम्' को यथाशीघ्र पढ़ा।
गौरवपूर्ण अतीत के संदर्भ में वर्तमान सामाजिक दुर्दशा और अशान्ति का तात्विक विश्लेषण, उपचार हेतु हिंसापूर्ण संघर्ष की अनुपयुक्तता, ज्ञान और [illegible] कर्म के महत्वपूर्ण सामंजस्य से मानवता एवं देश के पुनरुद्धार की आशा से तथा तदनुसार कार्यक्रम का [illegible] और ऐसे [illegible] आदि पुरोधा का जनसमुदाय द्वारा अभिषेक आदि सामने एक सद्भावपूर्ण नैतिक लक्ष्य प्रस्तुत करता है।

आपकी यह पुस्तक 'कुशाभिषेकम्' जन सामान्य एवं कार्यकर्ता की संहिता के रूप में सर्वमान्य हो तथा समाज की नयी भगवद्गीता बने ऐसी हमारी कामना है।

[illegible]

ब्रह्मलोचन दुबे।
प्रयाग

शम्भु नाथ त्रिपाठी
एकाउन्टेंट जनरल (रिटायर्ड)